मंत्र विज्ञान

स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी

मंत्र-विज्ञान

•

प्रवचनकर्ता :

स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

प्रकाशकीय

'मंत्र' शब्दका अर्थ है 'गुप्त परामर्श'। मन्त्र मनमाने ढंगसे नहीं, गुरुकी कृपासे प्राप्त होता है। गुरुकी कृपा और शिष्यकी श्रद्धाको मंत्र मिला देता है। जैसे एक लोहेसे कोई वायुयान, कोई तोप, कोई टैंक, कोई घर बना लेता है-वैसे ही स्वर और वर्ण अक्षरोंसे अनेक-अनेक प्रकारके मंत्र बने हैं, क्यों?

क्योंकि, कोई मनुष्य पशु-योनिसे आया, कोई देवयोनिसे कोई साधन सम्पन्न है, कोई सीधे नरककुण्डसे, किसीका मन सुप्त, किसीका जागृति-ऐसी स्थितिमें सबके लिए एक मन्त्र, एक देवता और एक विधि नहीं हो सकती।

किसी-किसी बीज मंत्रमें पाँच-पाँच स्वर-वर्णाक्षर होते हैं-वह पढ़कर नहीं बोले जा सकते, उन्हें गुरुसे सीखना होता है।

'मंत्र विज्ञान' पर परमपूज्य महाराजश्रीके प्रवचनोंको साध्वी कञ्चनजीने बड़े मनोयोगसे संकलित किया है, तथा 'आनन्द प्रस्तुति-आडियो-विजुअल सेन्टर' द्वारा इसे प्रकाशित करनेके लिए आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है।

एतदर्थ हम आभारी हैं।

महाराजश्री स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी द्वारा निर्देशित-लिखित विभिन्न उपयोगी मंत्रोंकी विभिन्न जप-विधियाँ 'कल्याण'में प्रकाशित हुईं थीं उन्हें संकलित कर 'भक्ति-सर्वस्व' नामसे सत्साहित्य प्रकाशनने कई संस्करण प्रकाशित किये हैं।

विश्वास है, साधकोंको मन्त्र-साधनसे सिद्धि प्राप्त करानेमें 'मन्त्र-विज्ञान' सहायक सिद्ध होगी।

-सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट
मुम्बई / वृन्दावन
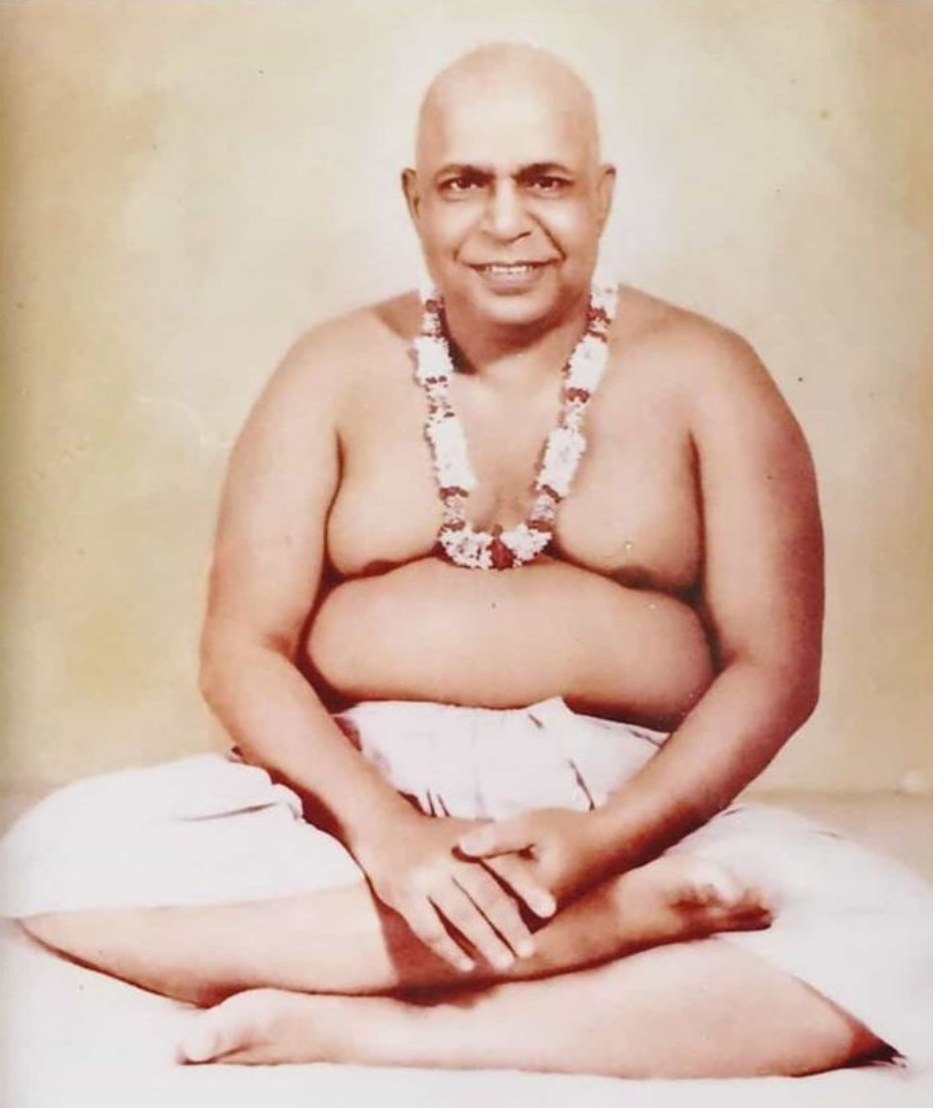
स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वती महाराज

मंत्र - विज्ञान

: 1 :

मंत्र माने शब्दके द्वारा अपने भावको परिपुष्ट करनेकी प्रक्रिया। तो उसमें हाथ जोड़ना भी है, पूजा करना भी है, शक्ल-सूरत सामने रखना भी है और हर-समय तो ये सब नहीं कर सकते न, तो ये दोहराया हुआ जो शब्द है, वह बारम्बार अपने अर्थको हमारी बुद्धिमें डालता है। 'स्मृति' माने तो याद ही होता है। स्मृतिमूलक जो धर्म होते हैं, वह श्रुतिविरुद्ध होने पर अग्राह्य हो जाते हैं। अच्छा, श्रुति वह है जो तत्काल वस्तुका अपरोक्ष कराती है। आप देखो, ध्यानसे सुनो। एक व्यक्तिका नाम ज्योतिर्मय है। आप पहचानते तो नहीं हैं न, लेकिन यदि हम बता दें आपको तो तत्काल पहचान जाओगे। तो श्रुति माने यह है कि जो वस्तु रूपमें प्रत्यक्ष है और अन्तरमें अपरोक्ष है, उसकी पहचान करानेमें जो शब्द तत्काल काम करा देता है, उसका नाम 'श्रुति' है। जो सुननेके बाद बार-बार याद करना पड़े, दोहराना पड़े, उसका नाम 'स्मृति' है। तो 'स्मृति' जो है, वह ज्ञानमें प्रमाण नहीं मानी जाती। यदि श्रुतिके अनुकूल है, तब तो प्रमाण है और विरुद्ध है, तो प्रमाण नहीं है। तो प्रमाणता तो 'श्रुति'में ही रही, 'स्मृति'में कहाँसे आयी? जब श्रुतिके विरुद्ध होने पर स्मृति प्रमाण ही नहीं है तो स्मृति जो है वह गृहीत-ग्राहक होती है अर्थात् पहलेसे जाने हुएको याद कराना और श्रुति जो है वह अज्ञात-ज्ञापक होती है अर्थात् जिसको हम नहीं जानते हैं, उसको मालूम करा देना। अज्ञात-ज्ञापक अविद्या-निवृत्ति यह श्रुतिका काम है और प्रमाणान्तरसे ज्ञातको याद करा देना-यह 'स्मृति'का काम होता है इसीसे इतिहास जो है वह स्मृतिकी कक्षामें जाता है। जैसे समझो पाँच वर्ष पहले कोई नियम बनाया गया, अब वह आज स्मृतिके रूपमें है, उसको हम याद करते हैं। यदि तत्काल अपरोक्ष वस्तुके वह विरुद्ध पड़ता है तो वह स्मृति प्रमाण नहीं होगी, तत्काल अपरोक्ष दर्शनमें आयी हुई जो वस्तु है, वही प्रमाण होगी।

मंत्र क्या है? मंत्र है, जो हम चाहते हैं, उसको बार-बार, बार-बार, बार-बार शब्दके द्वारा स्फुरित करनेवाला। जैसे वस्तु स्मारक होती है, जैसे क्रिया स्मारक होती है, वैसे शब्द भी स्मारक होता है। ईश्वरकी कृपासे शब्द द्रव्यकी अपेक्षा और क्रियाकी अपेक्षा भी सुगम है और अधिक-से-अधिक अपने साथ रह सकता है। किसी वस्तुको आप ढोकर नहीं ले चल सकते, लेकिन जो शब्द है, वह तो बिलकुल स्वतन्त्र जीभके अन्दर होता है, बल्कि शब्दोच्चारण चेष्टामें अन्तर्भूत हो जाता है। वस्तु और पूजा, वस्तु और क्रिया चेष्टामें अन्तर्भूत नहीं होती। लेकिन शब्द मध्यमामें जाकर केवल चेष्टाका रूप ग्रहण कर लेता है और पश्यन्तीमें जाकर दृष्टिका रूप ग्रहण कर लेता है। परामें जाकर तत्त्वका रूप हो जाता है। इसलिए मंत्र जो है, वह हमारे अन्तःकरणके निर्माणमें साक्षात् उपयोगी है। गुरु, शिष्य और मंत्र। जो अनुशासन माननेको तैयार नहीं हो, वह तो शिष्य ही नहीं होगा।

अच्छा, एक ओर प्रयत्न करते हैं कि हमारा मन निराकार, निर्विकार हो जाय और एक ओर कोई मूर्ति अपने चित्तमें बैठाने लगते हैं, तो करते क्या हैं ये पट्ठे......कि एकसे तो समाधि लगानेकी शिक्षा प्राप्त कर लेते हैं। एक गुरु हो गया कि हम अपने असंग सच्चिदानन्द-घन रूपमें बैठते हैं, और एकसे जाकर आकार, बनाने वाली विद्या प्राप्त कर ले आते हैं। तो थोड़ी देर आकार मिटावेंगे और थोड़ी देर गढ़ेंगे, खेत जोता और बोया। खेतमें कोई अनाज बोया और वह जब तक पैदा ही नहीं हुआ और फिर उसको उलट दिया। आकार बनाया और निराकारसे उसको खोद दिया, और निराकार किया और फिर उसमें शकल बना दी। घड़ा तोड़ा, घड़ा बनाया, घड़ा-तोड़ा, घड़ा बनाया-बनेगा क्या....? तो ये जो लोग निराकारको साकार, साकारको निराकार करते रहते हैं और कहते हैं कि एक गुरुसे काम नहीं चलेगा, साकारका गुरु दूसरा और निराकारका गुरु दूसरा होगा। अरे! वैराग्य हो तो निराकारको प्राप्त करो, राग हो तो साकारको प्राप्त करो। एकका मंत्र जपो, एकको पक्का बना लो।

'मंत्र' शब्दका अर्थ यह है कि अपने मनकी जो रक्षा करे। मन और त्र है। 'त्र' माने त्राण, त्राण, कल्याण। अपने मनको उद्वेगसे बचावे और मननसे त्राण करे। जिसके मननसे मनुष्यका रक्षण हो।

मननात् त्रायते इति मंत्रः।

एक व्युत्पत्ति तो इसकी यह हुई **त्रायते मननात्** और एक **'मनसा त्रायते'**, मनसे रक्षा करे। जो हमको पसन्द आया, उस मंत्रका हमने जप शुरू किया, तो इसमें मनकी वासना पूर्ण हुई। माने यह क्रिया मनकी वासनाके अनुसार ही है, इसलिए न यह वासनाको मिटावेगी और मनका करेगी। जैसे हमको कोई रोग है और हमने सुन रखा है कि ये सब पेड़-पौधे जितने भी हैं सब दवा होते हैं और इनमें-से किसीको छाँटकर उसकी पत्ती या जड़ खा ली और बोले कि इससे हमारा रोग दूर हो जायेगा, तो उससे रोग दूर नहीं होता। जिस मनकी उथल-पुथलको रोकनेके लिए मंत्रकी आवश्यकता होती है, उसी मनके द्वारा यदि मंत्र छाँटा जाय, तो वह तो मनका गुलाम रहेगा। मनका निरोध करने-करानेमें असफल होगा। हम अपने मनसे बहुत बढ़िया मंत्रका जप करते हैं। अरे, आज उसकी तारीफ सुनी है तो, बढ़िया लगता है। छः महीने बाद कहीं दूसरा मिल गया तारीफ करनेवाला। यह तो दलालोंकी बात हो गयी। वहाँ उसकी तारीफ सुनी, यहाँ उसकी तारीफ सुनी, वहाँ उसकी तारीफ सुनी। तो किसी-न-किसीकी रुचि ऐसी होती है, हमने देखा है कि पाँच सात मंत्र लिखकर बैठ गये-यह पंचाक्षर शिव मंत्र है, यह अष्टाक्षर नारायण मंत्र है, यह द्वादशाक्षर-नारायण मंत्र है, यह द्वादशाक्षर वासुदेव मंत्र है-इसमें-से जो तुमको अच्छा लगता हो, उसका जप करो। भेजते तो महात्मा ही लोग हैं लेकिन इसमें भी छँटाई जब अपनी ओरसे होगी तो वह भी मनके निरोधका काम नहीं करेगा। कितना विश्वास करो कि मंत्र उत्तम है और एक महात्माने पाँच-सात लिखा था और उसीमें-से मैंने छाँटा है, इससे हमारा सभी कल्याण हो जायेगा। विश्वास करना तो अच्छा ही है। कुछ पंचायती-मंत्र होते हैं जैसे हरे राम, हरे राम-राम राम हरे हरे-जो लोग किसी एक महात्मा या एक इष्ट पर श्रद्धा करनेमें असमर्थ हैं, वे

इस ढंगसे चुनाव कर लेते हैं कि हम तो हरे रामका जप करेंगे। वे भी मनकी पसंदगी ही चाहते हैं। वे भी संसारी ही हैं। उनको ईश्वर नहीं चाहिए अपने मनकी पसन्द चाहिए। परन्तु उसमें बड़े-बूढ़ेका हाथ भी होना चाहिए। केवल मनकी पसन्द ही नहीं चाहिए, उसमें अनुभवी पुरुषका हाथ होना चाहिए। वह यदि तुम्हारी पसन्दको पसन्द करता है, तो पसन्द भी ठीक है और, तुम्हारी पसन्दको नापसन्द करता है तो अपनी पसन्द नहीं चलेगी, महात्माकी नापसन्द ही चलेगी। क्योंकि विधिकी अपेक्षा निषेध प्रबल होता है। अच्छा कोई झूठ-मूठ भी रोक दे महात्मा कि इस मंत्रमें यह दोष है तो, उसे नहीं करना। या तो जिज्ञासु-साधक उच्चकोटिका हो या तो, मंत्र इतना प्रबल हो कि अपनी शक्तिका स्वयं प्रकाश कर दे। मंत्रमें भी महात्माके संकल्पकी शक्ति आती है। और, या तो इष्ट पर इतना दृढ़ विश्वास होवे कि उस मंत्रमें इष्टका आगमन हो जाय, आविर्भाव हो जाय।

तो नारायण! ऐसा कोई सिद्ध-पुरुष हो, जो यह देख सके कि पूर्वजन्ममें इसने कहाँसे कहाँ तक, साधना की थी और वह मरनेसे पहले कहाँ छूट गयी थी और उसको जानकर यदि वहींसे प्रारम्भ करवायेगा, तो उसमें सफलता बहुत जल्दी मिलती जायेगी। इसलिए इसमें-सिद्धोंकी परम्परामें यही रीति है कि शिष्यके पूर्वजन्मके अभ्यासको देखकर उसको आगे बढ़ावे। और, यह जिनको चेला बनाने-बढ़ानेकी भूख है, वह विश्वासी है, इसमें तो कोई शंका नहीं, अयोध्यामें जो जाय सो रामका ही भजन करेगा और वृन्दावनमें जाय सो कृष्णका ही भजन करेगा, काशीमें जो जाय वह शिवका ही भजन करेगा तो इसमें साधकके अन्तःकरणकी योग्यताका विचार नहीं है। वह तो उन्-उन धामों और रूपोंकी महिमा जिन लोगोंके मनमें जैसी बैठी हुई है, वह दूसरोंके मनमें डाल देते हैं। वह अपनी प्रसन्नताको दूसरेके द्वारा आस्वादन करना जानते हैं। इसलिए सबके लिए एक नाम, सबके लिए एक मंत्र, सबके लिए एक उपासना!

अब एक आदमी दास्य-भावसे भजन करता है तो पहुँच गया

सखी-भाव वालोंमें और उन्होंने कहा-अरे, दास्य-भाव तो बहुत छोटा है। दास तो दूर-दूर रहता है और पत्नी तो छाती पर चढ़ी रहती है। या प्रेयसी-भावमें तो बड़ा-गाढ़ा-प्रेम होता है, तो दास्य-भावको छुड़ा देगा, लेकिन प्रेयसी-भाव दासके मनमें कहाँसे आयेगा? विचलित हो जायेगा। इसलिए अपनी निष्ठामें जो दृढ़ता है, वह प्राप्त होनी चाहिए।

ऐसे भी मंत्र होते हैं, जो घण्टोंमें गर्मागर्म कर दें, हाँ! बिलकुल खौल जायेगा, साधारण व्यक्ति उसको समझ नहीं सकता। ये आश्चर्यकी बात नहीं है या कल्पना नहीं है, देखी हुई बात है कि लोग घण्टे आध घण्टेसे ज्यादा मंत्र नहीं जप सकते। सबसे बढ़िया यह है कि ईश्वर तो सब जगह है, इसलिए जो बात बतायी गयी है, वह मुख्य है। क्योंकि अपने मनको रोकना है, निरुद्ध करना है, निष्ठा तो तभी होगी न! जब मन इधर न जाय, उधर न जाय तो मनमें स्थिरता तभी आयेगी। यदि साधक बदलता ही रहेगा अपने मंत्रको, इष्टको, गुरुको तो उसके मनमें तो कोई निष्ठा नहीं आयेगी। इसलिए जहाँ तक हो सके, उपासनाकी शैलीमें थोड़ा बहुत परिवर्तन करनेकी आवश्यकता हो, तो वह तो हो सकता है परन्तु, गुरु इष्ट और मंत्र इन तीनोंमें परिवर्तन भक्तोंके लिए, कम-से-कम उपासकोंके लिए नहीं है। इसलिए उपासनामें तो एक ही बार गुरु इष्ट और मंत्रका निश्चय हो गया, और फिर जिन्दगी भर उसको करते जाओ, लेकिन यदि कुछ भीतर कुरेद रहा हो, जिज्ञासा उदय हो रही हो कि हम समझेंगे, देखेंगे, जानेंगे, अनुभव करेंगे, तब तो ज्यादा सत्पुरुषका संग करना चाहिए। और, उसकी भी संहिता होती है। यही नहीं, गुरुओंकी भी संहिता होती है। तो संहिता क्या है? गुरु कोई भी मंत्र बताता है-पर देखना यह पड़ता है कि वेदकी जो संहिता है, हमारा संविधान है, उसके अनुसार वह भी होवे। हमारा संविधान वेद है और वह शाश्वत है। यदि उसके विरुद्ध सत्संग कहीं ले जाता है, मंत्र कहीं उसके विरुद्ध ले जाता है, तो वह ठीक नहीं।

हमने तो बिच्छूका मंत्र जगाया था। साँपका मंत्र जगाया था। जो चमक पड़ जाती है शरीरमें, उसको ठीक करनेका मंत्र जगाया था।

छोटी जातिके लोग, गाँवके आस-पास जो होते हैं, जैसे आदिवासी होते हैं, भील होते हैं वैसे हमारे गाँवके पास बिंद हैं। उनके यहाँ बड़े अद्भुत-अद्भुत मंत्र-तंत्र हैं, जो दीवालीके दिन या ग्रहणमें जगाये जाते हैं। हमने जगाकर देखा था, वह जगते हैं। उस समय हमारा बड़ा विश्वास था। थोड़ी क्रिया होती है, थोड़ा विश्वास होता है। विश्वास छूट जानेके बाद फिर क्रिया काम नहीं करती। रामचरितमानसमें है-

नाम प्रभाव जान हर गिरिजा।
साबर-मंत्र जाल जेहि सिरजा।।

साबर मंत्रमें अक्षर तो अनमिले होते हैं और उनका कोई अर्थ भी नहीं निकलता है और उनका जप भी करना नहीं पड़ता है।

प्रगटि प्रभाऊ महेस प्रतापू।

शंकरजीकी कृपा, दुहाई गौरा-पार्वती-महादेवकी, दुहाई नैना जोगिनीकी-ऐसा बोलते हैं।

यह नैना-जोगिनी कोई सिद्ध हो गयी है और आशीर्वाद दे गयी है कि हमारा जो कोई नाम लेगा, उसका कष्ट दूर हो जायेगा। एक मंशाराम अघोरी हुआ है। उसका नाम लेकर कई मंत्र हैं। उस मंत्रमें मंशाराम अघोरीका ही स्मरण है। इससे लोगोंके दुश्मन मरते हैं। ऐसा विश्वास लोगोंमें प्रचलित है। हम तो यह सब जानते हैं न, हमको कुछ करनेका नहीं है। पर हम अघोरीकी बात भी जानते हैं और उनको अपनी अघोर साधनासे सिद्धि कैसे मिलती है, यह भी जानते हैं। वह विधि तो लोगोंको बतानेकी नहीं है। परन्तु उसमें ऐसी क्या युक्ति है कि मलिन विद्यामें भी बुद्धि होती है। उसका भी एक विज्ञान है। उसमें जो साहस या हिम्मतका काम करना पड़ता है। वह सोयी हुई शक्तिको धक्का देता है कि वह ऊपर चढ़ जाती है। मैं-मैं-पै-पै करनेवाले तो पड़े ही रह जाते हैं, अपनी जगह पर ही रह जाते हैं।

अच्छा! वेदान्तके भी मंत्र होते हैं। वे वृत्तिको तदाकार करते हैं। वेदान्तमें अज्ञातका ज्ञापन करनेवाला मंत्र होना चाहिए। जो चीज दृष्टिसे, मनसे, बुद्धिसे सामने मालूम नहीं पड़ रही है, वह कैसी है-

उसका ज्ञान करानेवाला मंत्र होना चाहिए। **अहं ब्रह्मास्मि** आदि जो मंत्र हैं-ये जप करनेके लिए नहीं हैं। यह नहीं कि लेकर माला '**अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि**'-करेंगे। वह तो अनजान लोग इसे जानते नहीं है। जप करनेका यह मंत्र नहीं होगा। यह तो विचार करनेका मंत्र है, विचारका आधार है।

जैसे अ-ब-स होता है, ऐसे अहं-ब्रह्म-अस्मि ये तीन पैराग्राफ हैं इसके अ-ब-स। वह रटनेके लिए नहीं है, अ पैराग्राफका क्या मतलब है, ब का क्या है और स का क्या है, जैसे होता है न ऐसे-अ,उ,म, ओऽम्-ओऽम् भी है। अच्छा-वेदान्तमें ओऽम्का उच्चारण कोई लम्बा करे या बड़ा करे, तो उससे होगा क्या कि उसकी वृत्ति बहिर्मुखसे अन्तर्मुख हो जायेगी, लय हो जायेगा, कारण-अवस्थाकी प्राप्ति हो जायेगी। आँख बन्द हो जायेगी, मनकी चंचलता मिट जायेगी। जैसे अनजानमें सुषुप्ति आती है, ऐसे हो जायेगा।

जिसको संसारसे वैराग्य नहीं होता हो उसको अकेले 'ओऽम्'का जप नहीं करना चाहिए। क्योंकि वह तो लय हो जायेगा उसका, वह तो सब छूटेगा और स्त्रियोंके लिए जो त्यागका जीवन है, वह स्वाभाविक नहीं है, स्त्री शरीरके अनुरूप नहीं है। अच्छा, कोई उसमें विशेष होवे, तो उसके लिए कोई बात नहीं हैं। गार्गी हुई हैं। स्त्री शरीरमें धारणकी शक्ति है और पोषण-यही दोनों तो मातृत्व हैं। यह स्त्रीके ही शरीरमें होता है। पुरुषके शरीरमें नहीं होता है। इसलिए माता कहीं भी जायेगी तो खिलानेवाली वृत्ति उसकी जा नहीं सकती। जैसे परमहंस रामकृष्ण-जीकी पत्नी शारदा माँ। वे परमहंसजीकी कितनी सेवा करती थीं। उनकी जो शिष्या थीं, वह हमारे सामने थीं। हमने रातभर उनको भोजन बनाते देखा है और सबेरे उठकर हमको खिलाती थीं और हम खाते थे। अभी उनकी जब नब्बे-चौरानबे उम्र हो गयी थी, और आँखसे पूरी तरह उनको दिखता नहीं था। मैं उनके पास गया तो हमको अपने पास बैठा लिया, कढ़ाई चढ़ाकर बैठ गयीं, और तरह-तरहकी पकौड़ी बनाकर हमको खिलाने लगीं। हम खाने लग गये, माताजी हैं, वह यह दो काम कर

सकती हैं। एक तो पूँजी उसको सम्भला दी जाय तो बिलकुल उसको सुरक्षित रख सकती हैं। यह धारण हुआ और दूसरोंको खिलानेका काम उनके जिम्मे किया जाय, तो वह खुद खिला सकती हैं। वह माताजी हमारी उड़ियाबाबाजीसे भी मिली थीं 'रामघाट'में। परमहंस रामकृष्ण-की पत्नी नहीं, पत्नीकी शिष्या, उनका नाम भी 'शारदामाता' था।

तो; ओऽम्‌की बात कर रहे थे। जो बिलकुल लीन करनेवाले मंत्र होते हैं, वे भावकी दृष्टिसे ठीक नहीं होते हैं, क्योंकि उसमें भगवान् की लीलाका ध्यान छूट जायेगा। ओऽम् करके लीन होओगे तो भगवान्‌की लीलाका ध्यान छूट जायेगा। और, ज्ञानके भी अनुरूप नहीं है; क्योंकि उसमें विचारका लय हो जायेगा। तो जो पूर्ण वैराग्यवान् होता है, वह सब कुछ छोड़कर केवल परमात्माका अनुभव करना चाहता है, उसके काममें यह आता है और वैसे तो भिक्षा माँगने जाते हुए भी बोल दो तो भिक्षा माँगनेके काममें भी आता है। वह बात अलग है। अब यह मंत्रोंकी ऐसी न्यारी-न्यारी शक्ति होती है।

देखो! यह जब सृष्टि बनती है, तो एक ध्वनि करती हुई बनती है। कोई भी क्रिया बिना ध्वनिके नहीं हो सकती। उँगली हमारी हिल रही है-इसमें एक आवाज है। इसको हम अपने कानोंसे नहीं पकड़ सकते। जितनी आवाज हम सुन रहे हैं अपने कानसे, इससे ढाई लाख गुना कम हो जाने पर यह आवाज कानसे पकड़में नहीं आती है, पर होती रहती है। जहाँ सृष्टिका स्तर बहुत सूक्ष्म है वहाँ सृष्टिके स्फुरणमें, प्रकाशमें जो ध्वनि होती है उसको हम ग्रहण नहीं कर सकते हैं। तो यह जो मंत्र हैं, वह किसी-किसी स्तरके अनुरूप होते हैं। तो वैखरी-वाणीका मंत्र, मध्यमा-वाणीका मंत्र, पश्यन्ती वाणीका मंत्र और परावाणीका मंत्र-ये भेद हो जाते हैं। तो ठीक वैखरी वाणीके स्तरके पदार्थ, जो दिखायी पड़ रहे हैं और मध्यमा वाणीके स्तरके पदार्थ और पश्यन्ती वाणीके स्तरके पदार्थ और परावाणीके स्तरके पदार्थ जो हैं, उनमें जो शक्ति है, उनमें क्षोभ करते हुए उन्हीं-उन्हीं स्तरके पदार्थोंको प्रकट करती है। 'स्पन्द' बोलते हैं उसको। ऐसा हिलाती है सृष्टिको कि उसमें-से हम जैसा

बनाना चाहें तैसा निकल आये। यह मध्य-प्रदेशकी तरफ एक मीड़ा नामकी चीज बनाते हैं-भोजनके लिए। कढ़ाईमें घीसे बेसनको भूनते हैं। हाथसे चलाते हैं। गीला नहीं होता है, सूखा होता है। तो बिना पानी खास-खास तरहकी शक्ल बन जाती है और वह देखनेमें भी अच्छा होता है और, खानेमें भी अच्छा होता है। तो वह जिस ढंगसे हिलाया जाता है न, अब यह तो कल्पना आप कर ही सकते हैं कि जिस ढंगसे हाथ ऊपर-घुमावेंगे, वैसी उसकी शक्ल बन जायेगी।

संसारके जो पदार्थ बनते हैं इसको शब्द हिला-हिलाकर बनाते हैं। तो मूलमें शब्द और पदार्थ एक होते हैं। आगे आने पर ये अलग-अलग मालूम पड़ते हैं कि मुँहमें शब्द है और आँखमें रूप है। तो असलमें जीभ और हाथ, ये दोनों-यह जो मूलमें मैटर है-सूक्ष्म-उसको हिलाकर ही जीभ बनी है बोलनेवाली, आँख बनी है देखनेवाली और हाथ बना है, पकड़नेवाला। यह बात तो भागवतमें बड़े विस्तारसे है-

स एष जीवो विवरप्रसूतिः प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः।
मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपं मात्रा स्वरो वर्ण इति स्थविष्टः।।

(11.12.17)

जैसे आवाज सूक्ष्मसे स्थूल होती है वैसे पदार्थ भी सूक्ष्मसे स्थूल होते हैं। और ठीक उसी क्रमसे होते हैं जिस क्रमसे आवाज सूक्ष्मसे स्थूल होती है।

यह मंत्रका मैं विज्ञान बता रहा हूँ।

अब मंत्र हमको क्या बनानेके लिए चाहिए। माने अपने दिलको, अपनी आँखको, अपने दिमागको बनानेके लिए हमको कैसा मंत्र चाहिए? रामका दर्शन करना हो तो कैसा? कृष्णका दर्शन करना हो तो कैसा? सम्पदाको अपनी ओर खींचना हो तो कैसा? शत्रुको दबाना हो तो कैसा?-इसके लिए ये शब्द ही होते हैं, जो अन्तरमें उच्चारण करने पर न केवल व्यष्टि शरीरमें, बल्कि समष्टिमें भी अपना प्रभाव उत्पन्न करते हैं। क्योंकि शब्द केवल व्यक्तिके नहीं होते हैं। देखो! अमेरिकामें

शब्द बोला जाता है बिना किसी तारके, हमारा रेडियो जहाँ-तहाँ रखा है, उसे पकड़ता है।

हम लन्दनका समाचार सुनते हैं, हम रूसका, चीनका समाचार सुनते हैं तो क्या तार पर चढ़कर वह शब्द आता है? माने शब्द तो व्यापक ही हो जाता है, हमारे रेडियोमें यह शक्ति है कि वह उसको ग्रहण कर सकता है। इसलिए जो शब्द, हम कहीं भी बोलते हैं, वह सारी सृष्टि पर अपना प्रभाव डालते हैं। हम किसी दूसरेको गाली देते हैं तो वह उसीको नहीं मिलती है, वह दूसरोंको भी मिलती है। माने एकको हम गाली देते हैं तो सबको गाली देते हैं और न केवल सबको देते हैं बल्कि अपने आपको भी देते हैं, क्योंकि वह अपने कानमें भी लौटकर आती है। तो इसलिए बोलनेके समय यह दी हुई गाली सिर्फ दुश्मनको ही नहीं लगती है, सारी दुनियाको जाकर छूती है और अपने कानमें भी लौटकर आती है।

तो, मंत्रका विज्ञान यही है कि यह यदि किसीको सिद्ध है तो वह सृष्टिमें परिवर्तन कर सकता है। पर सिद्धि कितनी है, वह सिद्धि कितनी बड़ी है-इस बातको सब लोग नहीं जानते हैं। अब देखो भाई! अपने अनुभवको तो हरिश्चन्द्रजी ही बता सकते हैं। उन्होंने एक दिन कहा कि हमको कोई शक्तिशाली मंत्र चाहिए। तो मैंने उनको बताया। मैंने तो बताया था, बहुत दिन करनेके लिए, पर ये तो एक ही दिनमें परेशान हो गये। एक ही घण्टेमें बोले कि सहन नहीं होता है। मैंने कहा-कि छोड़ दो, शरीरकी धातु कमजोर है। माने न केवल मानसिक शक्तिसे ही इसका सम्बन्ध है, बल्कि शारीरिक शक्तिसे भी इसका सम्बन्ध होता है। वह तो उथल-पुथल कर दे। वह जो कुण्डलिनीका जागरण होता है, यह जो आँखमें लाली आती है, जो मस्ती छा जाती है, ये सब मंत्रसे हो सकता है। शब्दमें शक्ति तो स्वाभाविक है, उसको जोड़नेका यंत्र इधर है, सुननेका यंत्र इधर है। शरीरमें केवल उच्चारण या श्रवणका यंत्र लगा हुआ है। और, जो शब्दकी शक्ति है वह तो सम्पूर्ण-सृष्टिमें काम करती है। तभी वह रामको भी पकड़कर ले आयेगी, कृष्णको भी

पकड़कर ले आवेगी, वह सामने लाकर खड़ा कर देगी। एक जगह मैंने पढ़ा था, पढ़ी हुई बात आपको सुनाते हैं। अंग्रेज लोग भी तो मंत्र शक्ति पर बहुत विश्वास करते हैं। ये कुण्डलिनी जागरणकी पद्धति 'सरपैंट ऑफ पावर', पुस्तक है तो बड़ी-परन्तु, मैंने किसीसे पूरी पढ़वाकर सुनी थी कि इसमें क्या लिखा है।

अच्छा....देखो! अब आपको एक बात सुनाते हैं, एकके मनमें यह इच्छा थी कि हमको पाँच-हजार रुपया मिल जाय, अब उसके भाग्यमें नहीं था, उसके पौरुषमें नहीं था, उसके व्यापारमें नहीं था, वह तो चाहता था कि हमको यह, मंत्र ही दिखा दे कि वह रुपया देता है। अच्छा, तो क्या हुआ कि वह मंत्र-साधना करने लगा रातको। जितना करना चाहिए था, उतनी गिनती पूरी हो गयी। अब क्या हुआ कि जिसदिन वह अनुष्ठान पूरा हो रहा था उसका लड़का निकला बाहर, छोटा बच्चा था, सड़क पर चला गया। कोई मोटर दौड़ती हुई आयी, उसके नीचे आगया। मोटरमें जो आदमी था वह बहुत सज्जन और बहुत सत्पुरुष था। उसने उतरकर देखा कि लड़का तो मर गया है। किसीको मालूम तो था नहीं और उसने पाँच हजार रुपये उसके पास नत्थी कर दिया। मरे हुए लड़केके कुर्तेमें रख दिया। अब हल्ला हुआ, लड़का मर गया, मर गया। आकर उसने उठाया, लड़का तो मिला ही लेकिन मरा हुआ, उसके पास पाँच-हजार रुपया था। अब वह बोले-बड़ा भारी अपराध किया है, अब हमको लड़का मिलना चाहिए, रुपया नहीं चाहिए। फिर वह जाकर लड़केको रखकर बैठ गया भजन करने। माने उसी मंत्रका सकाम भावसे फिर अनुष्ठान करना शुरू किया। पहले भी सकाम-भाव था। अच्छा, फिर क्या हुआ-वह जो मुर्दा था लड़केका, वह उठकर खड़ा हो गया, जिन्दा नहीं हुआ, चेतना नहीं आयी, मंत्रकी क्रिया शक्तिने उस लड़केके मुर्देको बिना होश-हवासके खड़ा कर दिया। कई चीजें ऐसी होती हैं, जो मंत्रसे उठती हैं, बैठती हैं, हिलती हैं, पड़ती हैं। अब उसको डर लगा कि कहीं भूत-प्रेत न आ गया हो। बोला-हे भगवान्! यह क्या है?

यह हम आपको चमत्कारकी बात इसलिए सुनाते हैं कि मंत्रकी शक्ति ऐसी हो सकती है। मलिन-मंत्र भी होते हैं और निर्मल-मंत्र भी होते हैं। वे शक्ति तो अपनी ओर प्रकट करते ही हैं। जैसे भूतके, भैरवके, साकणीके, डाकणीके मंत्र होते हैं, ये निर्मल नहीं होते, मलिन होते हैं। मलिन शक्तिका उपयोग भी करते हैं। माने जो व्यक्ति चाहता है, उसके अनुरूप मंत्र होना चाहिए।

हमारी मौसीजी संन्यासिनी हो गयी थीं तो हम बचपनमें, बनारसमें उनके पास रहते थे। तो उनकी जो गुरुजी थीं, वह भी स्त्री थीं, माता थीं, उन माताका नाम प्रेमपुरी था, तो वह लोगोंका जन्तर-मन्तर कर देती थीं। जो हमारी मौसी थीं, वह तो कुछ जानती नहीं थीं। वह तो सरल-सरल जैसे हमारी माताजी थीं, बस उनका ही एक रूप और जो गुरुजी थीं, वह बहुत निपुण थीं। वह तो गन्दी चीजका भी प्रयोग करती थीं। शत्रु पर विजय प्राप्त कराना, मुकदमा-जिताना-इनमें गन्दी चीजोंका भी प्रयोग करती थीं। तो कहना यह है कि शब्दमें शक्ति है-यह बात बिलकुल नहीं भूलना चाहिए। मंत्र बहुत कल्याण करता है। इसीसे अर्थ न जानते हों, भाव न जानते हों, फिर भी शब्दको दोहरावें तो वह वस्तुको ला देता है। तो आजकल बेकायदेसे तो पढ़ते हैं। खण्डन-खण्ड-खाद्य तो पढ़ लेते हैं, परन्तु होड़ाचक्र मालूम नहीं रहता है।

× × ×

प्रश्न-क्या नये मंत्र बनाये जा सकते हैं?

महाराजश्री-नहीं बनाये जा सकते। बहुत बड़ा सिद्ध हो तो वह बनाता नहीं है, वह तो सहज स्वभावसे बोलता है। उसकी बोली हुई जो वाक्य-रचना है-वह मंत्र हो जाती है। सिद्ध-पुरुषके संकल्पसे उसके शब्दमें उसके भीतरकी जो शक्ति है वह प्रकट हो जाती है।

●

प्रवचन : 2

यह है हमारे अद्वैतियोंकी प्रक्रिया कि ऐसा कोई यज्ञ नहीं है, ऐसी कोई भक्ति नहीं है, ऐसा कोई योग नहीं है कि जिसकी संगति अद्वैत सिद्धान्तके साथ लगा न सकें। तो, ये मंत्र भी हृदयको एकदम निर्मल कर देते हैं। ऐसे मंत्र होते हैं जिसमें राग-द्वेषका भाव उदय न हो चित्तमें, और इसके बाद यदि जिज्ञासा हो जाय तो अद्वैत-तत्त्वका साक्षात्कार हो जाता है। मिनटोंमें होगा। एक चोट मारेंगे और हो जायेगा। यदि यह निश्चय हो जाय कि एक सच्चिदानन्दघन है, इसमें न कोई दोस्त है, न दुश्मन, न अच्छा है, न बुरा, न पाप है, न पुण्य, न अन्दर है, न बाहर, न कारण है, न कार्य है। हम एक मंत्रके द्वारा ऐसा निश्चय करनेका प्रयास करते हैं और यदि उस मंत्रार्थमें मनुष्यका अन्तःकरण आरूढ़ हो गया और फिर जिज्ञासा हो गयी। उस मंत्रके अर्थमें आरुढ़ होनेके बाद जिज्ञासा भी चाहिए कि है तो सब बराबर, परन्तु अज्ञान अभी है। उस अज्ञानको मिटानेके लिए यदि प्रसव-पीड़ाका उदय हो जाय, तो एक मिनटमें बच्चा पैदा कर सकते हैं। और, यह मैं कर सकता हूँ, दूसरोंकी बात हम नहीं करते। यही आपके सामने बैठा हुआ मैं-कर सकता हूँ। परन्तु उसके पहलेकी जो स्थिति है, वह बनानी पड़ती है और वह बनानेमें आदमीके मनमें अस्थिरता आजाती है। बोले कि हमको साम्य नहीं चाहिए, कृष्ण चाहिए। तो कृष्ण चाहिए और समता चाहिए में तो बड़ा फर्क है। तत्त्वज्ञानका उदय सम अन्तःकरणमें जिज्ञासा होने पर होता है। दुनियामें चाहे कुछ हो जाय, हमारा न बनाव है, न बिगाड़ है। हमने जो दुनिया छोड़ दी, वह सब हमारे लिए खोई हुई चीजके बराबर है। वह चाहे सत्‌में आकार हो, चाहे चित्‌में स्फुरण हो और चाहे आनन्दमें उल्लास हो। चाहे सत्‌का विवर्त हो, चाहे चित्‌की प्रतीति हो, चाहे आनन्दका उल्लास हो। जहाँ समत्व आया, उसको साम्य बोलते हैं। इसका जो उपासना ग्रन्थ है उसमें ऐसा बढ़िया वर्णन है, सब पोथीमें

छपा हुआ नहीं है। वह सब अनुभवीके अन्तःकरणमें दिखायी पड़ता है। उसका दर्शन होता है, वह लिखा नहीं जाता है। साम्यका ऐसा प्रकाश है उसमें कि राम और कृष्ण एक हो जाते हैं, उसमें निराकार और साकार एक हो जाते हैं। उसका जो अर्थ है-उसका अनुभव है, चेतन होना, प्रकाश होना।

तो, मंत्र अपनी रोशनीमें अपने अर्थका दर्शन कराने लग गया। अनुभव माने जैसे कृष्णका हम जप करते हैं, तो कृष्ण शब्दका अर्थ है, साँवरा, सलोना ब्रजराजकुमार। तो यदि कृष्ण शब्दका उच्चारण करते ही हमें पीताम्बरधारी, मुरली-मनोहर, श्याम-सुन्दरका दर्शन होने लगा तो मंत्र जाग गया। अर्थ माने यह नहीं कि घड़ेका मतलब क्या है? बोले कि कलश। कलश माने क्या? बोले कि कुम्भ। यह नहीं। शब्दके बदले जो शब्द आता है, वह मंत्रका अर्थ नहीं है। मंत्रका अर्थ वह है जो ठोस है, मैटर है। शब्दका अर्थ मैटर है, शब्दका अर्थ पर्यायवाची शब्द नहीं है। तो जब मंत्र अपने अर्थका दर्शन कराने लगता है तब कहते हैं, मंत्र चैतन्य हो गया। वैसे रसास्वादन न हो, तब भी यदि मंत्रका ठीक-ठीक उच्चारण होने लगे तो मशीन चालू हो गयी। अच्छा, उसका जो मूल मैटर है वह भीतर है। वह उस फैक्ट्रीमें होकर खटाखट, खटाखट निकलने लगेगा।

नारायण, योगी-लोग जो हैं न-हम लोगोंके जो चेले होते हैं-जिनको हम मंत्र बताते हैं-उनको गड़बड़ानेके लिए आते हैं। वे कहते हैं, 'अरे! अभी तो तुम बचपनेका काम कर रहे हो, तुम्हारा मन तो एकाग्र हुआ ही नहीं और मन एकाग्र नहीं हुआ, तो खाली मंत्र जपनेसे क्या होगा? आओ, हम तुम्हारा मन एकाग्र कर देते हैं। थोड़ा प्राणायाम करो, थोड़ा ध्यान करो, धारणा करो।' अब देखो, मंत्रका अपमान हो गया। नहीं तो मंत्र होना माने मंत्रकी फैक्ट्रीका चालू होना और उसमें जिस मैटरसे शक्ल-सूरत बननी है, वह मैटर तो पहलेसे ही अपने दिलमें है। अब वह पकड़कर बिलकुल शक्ल-सूरत तुम्हारे सामने, लो-कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण-गढ़कर हजार कृष्ण तुम्हारे

सामने वह मंत्र डाल दे। हजार कृष्ण तो वह मंत्र निकाल सकता है, बल्कि इसे ऐसे भी कहते हैं कि श्रद्धा होने पर हमारा मन काम करेगा, यह कहना तो अपनी महिमा बढ़ाना है कि हम श्रद्धा करेंगे तो हमारा मंत्र काम करेगा। मंत्र पर श्रद्धा नहीं है, अपने ऊपर श्रद्धा है। सबसे बढ़िया मंत्र वह होता है, जिसके बारेमें हम यह मानते हैं कि हम श्रद्धा करें कि न करें, हमारा मंत्र तो अपना काम करेगा। सबसे बड़ी श्रद्धा यही है कि हमारी श्रद्धा काम नहीं करती, मंत्र काम करता है।

गायत्री-मंत्र तो वेदमंत्र है। ऐसा हमारे वैदिकोंमें एक बहुत बड़ी महत्त्वपूर्ण परम्परा है, जिसमें यह मान्य है कि देवता कहीं होता नहीं है। उसका कोई लोक नहीं है, न इन्द्रलोक, न स्वर्गलोक, न ब्रह्मलोक। यह जो हम मंत्रोंके शब्द उच्चारण करते हैं, ये उच्चारण समकाल ही शब्द देवताको बना देते हैं। ये वैदिक सिद्धान्त है भला! जैसे हजार यज्ञमें किसीने इन्द्र देवताका मंत्र पढ़ा तो हजारों यज्ञोंमें नया-नया इन्द्र प्रकट होगा और एक साथ आहुति लेगा। तो हजार इन्द्र स्वर्गमें-से नहीं आते हैं, वह हजार-जगह वेदका मंत्र बोला जाता है तो उसमें हजार इन्द्र पैदा हो जाते हैं। अब वही यदि गलत बोला गया तो कोई लँगड़ा इन्द्र, लूला इन्द्र तो आवेगा नहीं, बहरा या अन्धा इन्द्र आवेगा नहीं। इसलिए मंत्र ठीक बोला जाना चाहिए।

गायत्री-मंत्रका जो अर्थ है, उस अर्थको गायत्री मंत्र प्रकट कर देता है। यह कई तरहका होता है। अधिदैव दृष्टिसे गायत्री और अध्यात्म-दृष्टिसे गायत्री और अधिभूत दृष्टिसे गायत्री। सर्वको ईश्वरके रूपमें प्रकट करना, गायत्री देवीको ईश्वरके रूपमें प्रकट करना और गायत्रीके प्रतिपाद्य सविता देव-जो हमारी बुद्धिके अन्तर्यामी भी हैं-उनको प्रकट करना। गायत्री ईश्वरके मिलनेसे लेकर और देवताके दर्शनसे लेकर, सिद्धिसे लेकर अन्तःकरणशुद्धि तकका सब काम कर देती है।

अब उसमें यह दिक्कत है कि मंत्र सबके लिए एक नहीं हो सकता। मंत्र माने गुप्त भाषा। मंत्रकी जहाँ प्राइवेसी चली जायेगी, वहाँ मंत्र

निकम्मा हो जायेगा। उसकी फिर दीक्षा लेनी पड़ती है। कायदेकी बात यही है कि अगर हम किसीको बता दें कि हमारा गुरुमंत्र यह है, तो फिर गुरुसे दोबारा लेना पड़ता है। या फिर संस्कार कराकर उसको गुप्त रखना पड़ता है। यह तो तंत्र है न, तंत्र माने टेकनीक। उसी टेकनीकसे वह बात बनती है। दूसरी तरहसे नहीं। एक रसायन अलग करना है। एक अल्मोनियम अलग करना है, तो पहले उसमें क्या डालना है और बादमें उसमें क्या डालना है और कितनी मात्रामें डालना? यदि उसमें फर्क पड़ जायेगा कि पहले वाला पीछे और बाद वाला पहले, मात्रामें फर्क पड़ जायेगा, तो रसायन नहीं निकलेगा। अल्मोनियम नहीं निकलेगा। देवताको प्रकट करनेकी एक टेकनीक है। उसी विद्याको 'तंत्र-विद्या' बोलते हैं। देखो, कोयलकी आवाज कूहू-कूहू है और कौएकी आवाज काँव-काँव है-दोनोंका फर्क है न! यह कुत्तेकी भौं-भौंमें फर्क है। तो इसी तरह मंत्र जो है वह अपनी मशीनको बनाता है। जिस मशीनसे बोला जाता है, उसका निर्माण कर देता है। जैसे देखो, पानीमें काई-छाई होती है। हम गाँवकी बात बोलते हैं, तो उसमें बाहरसे एक ढेला फेंक दें, तो काई छँट जायेगी और एक खास जगह तक पानी दिखायी देने लगेगा। तो यह शब्द भी एक ढेलेके समान है-ऐसा समझो! इसको जब अन्तःकरणके सरोवरमें फेंकते हैं तो एक हद तक उससे काई छँट जाती है और यदि बार-बार फेंके, बार-बार फेंके तो सब काई जाकर किनारे लग जाती है और वह बीचमें आती नहीं है। तो ऐसे अन्तःकरणके सरोवरको स्वच्छ करनेके लिए ये मंत्र शब्द डाले जाते हैं भीतर।

वैसे इष्टका ध्यान, सिद्धि प्राप्त करनेका स्वतंत्र-साधन भी है। इतना ही नहीं, धर्म इष्ट-सिद्धिका स्वतन्त्र साधन भी है और मंत्र, इष्ट-सिद्धिका स्वतन्त्र साधन भी है। अब तीनोंको अगर मिला दिया जाय तो वह एक सम्मिलित साधन भी है। उसमें जो सापेक्ष बना देते हैं, उसमें स्तर भूल जाता है। इसमें ऐसा है कि एक तो निश्चिन्त होकर बैठना आवश्यक है। हे दुनिया! तुम अपनी जगह पर रहो! अब हम ईश्वरके दरबारमें जा रहे हैं। अगर वह कदाचित् न लौटावें तो? कह दें कि तुम

यहीं रहो! तो हम उसका हुकुम मानेंगे कि कहेंगे तुम हमको दुनियामें भेज दो?.....

हम उसके पास जाने पर उसके मनकी करेंगे, अपने मनकी नहीं। भेजेगा तो आवेंगे और नहीं भेजेगा तो नहीं आवेंगे। दुनियासे हमारा कोई द्वेष भी नहीं है, पर इतना राग भी नहीं है कि ईश्वरके मना करने पर फिर आवें। इसको बोलते हैं योगशास्त्रकी भाषामें 'प्रयत्न-शैथिल्य'।

दुनियामें हमको अब भजनमें-से लौटकर कोई काम करना है, दुकान जाना है कि ऑफिस जाना है, यह ख्याल छोड़कर भजनमें बैठना चाहिए। दस मिनटमें ध्यान टूट जाय, यह उसमें कुछ नहीं होता। फिर बैठने पर मैं अपवित्र हूँ, मैं अयोग्य हूँ-यदि यह बात जब बनी रहेगी तो खटकता रहेगा कि मैं तो अपने प्यारेसे मिलने लायक स्थितिमें नहीं हूँ। जैसे हमको मासिक धर्म हुआ है, गुरुजीको कैसे छुएँ? यह मनमें खटकेगा कि नहीं खटकेगा? ऐसे जब मनुष्यके मनमें मलिनता रहेगी, तो परमात्माको छूनेमें उसकी हिम्मत शिथिल हो जायेगी। तो अपनी पवित्रताका चिन्तन होना चाहिए। मैं पवित्र हूँ, बिलकुल परमात्मासे एक होने लायक हूँ। रुक्मिणीने कहा कि कृष्ण अगर तुम योग्य हो तो मैं भी तुमसे कम योग्य नहीं हूँ। यह आप भागवतमें देख लेना। भागवतमें रुक्मिणीने ऐसा कहा कि जितनी योग्यता तुम्हारे अन्दर है श्रीकृष्ण! उतनी मेरे अन्दर भी है-

का त्वा मुकुन्द महती कुलशीलरूप-
विद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम् ।
धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या
काले नृसिंह नरलोक मनोऽभिरामम्।।

(10.52.38)

मैं तुमको इसलिए पसन्द करती हूँ कि तुम सौन्दर्यमें, धनमें, धाममें, शीलमें, कुलमें मेरी बराबरी करते हो। 'आत्मतुल्यं' मैंने देख लिया है कि तुम मेरी बराबरीके हो और मैं कोई कामिनी नहीं हूँ, धीरा हूँ। यह भी लिखा है कि मैं धीरा नायिका हूँ। '**धीरा पतिम् कुलवती**'

खानदान मेरा तुमसे अच्छा है। तो ईश्वरके सामने जानेमें जो अपनी हीनताका भाव है, वह बीचमें रुकावट बन जाता है कि अरे! इनके साथ कैसे मिल जायें, इसकी छातीसे कैसे लग जायें-यह रुकावट डालता है। अब यदि यह हीनताका भाव होवे तो क्या करना चाहिए? उसके लिए पवित्रता-सम्बन्धी अनेक नियम होते हैं। जैसे भीतर कुण्डलिनी शक्ति है उसमें-से प्रकाश और शक्ति बिखर रही है और हमारा व्यक्तित्व उसमें डूब रहा है। सूर्यमण्डलसे, अमृतमयी, रसमयी, ज्योतिर्मयी धारा बह रही है और मैं उसमें सराबोर हो रहा हूँ। हमारे इष्टदेव शंकरजी पर जो पंचामृत चढ़ता है, वह हमारे शरीर पर आ रहा है। माने इस तरहसे किसी-न-किसी तरहसे अपनी हीनताका जो भाव है कि हम इनकी बराबरीके नहीं है, उसको मिटाना पड़ता है। अच्छा, फिर यह मंत्र, हमारा मनमाना नहीं है। उसी समय एक-एक मिनटमें अपने स्तरको ऊँचा करता चला जायेगा। यह नहीं कि कोई जिन्दगी भर ऐसा करे।

अब एक दण्डी स्वामी कहते थे कि हाथ धोनेकी और नहानेकी जो विधा है, इसका यदि छः-आठ वर्ष तक अभ्यास नहीं कर लोगे तो तुमको पूजामें बैठनेका अधिकार ही नहीं होगा। नारायण कहो। उसी समय करनेसे चल जायेगा। छः वर्ष अन्तःकरण शुद्धिका साधन करें माने श्रृंगारमें ही यदि पच्चीस वर्ष बीत जायेंगे, तो जवानी बीत जायेगी प्रियतमसे मिलनेके लिए-

यौवन उमर सफल कर बौरी,
ध्यान सब त्याग-त्याग।
ललित किशोरी लुटनवा,
प्रीतम के संग लाग-लाग।।

यदि कहोगे कि पहले हम पचास वर्ष साधना करेंगे, फिर ब्रह्मज्ञान होगा, तो वह तो अपनी योग्यताको नष्ट कर देना है। अच्छा- अब इसके बाद इष्टदेवकी ओर ध्यान देना है कि वे बाहर हैं कि कहीं भरी सभामें है कि मैदानमें। तो उनके साथ वैसे मिलना पड़ेगा। भरी

सभामें तो बड़े संकोचके साथ मिलना पड़ता है। यह नहीं कि हमारा पति है तो हम जाकर उसको चाहे जो कर लें। भरी सभामें है तो वैसे, बाहर है, वह वैसे, भीतर कमरेमें है तो वैसे। तो वह एकताकी अनुभूति तभी होगी जब वह भीतर कमरेमें होगा। दोनों पति-पत्नी वहाँ एक होंगे, जहाँ दूसरा कोई नहीं होगा। यह इसकी लीला है।

अच्छा, अब देखो, गुरुमें-से ज्ञानधारा निकलती है। पहले जानकारी, फिर प्यार। अँधेरेमें प्यार नहीं होता है। जो जानकारी दूसरेको मालूम करानेके लिए होती है, वह आध्यात्मिक नहीं रह जायेगी, सामाजिक हो जायेगी। माने जैसे हमने कोई ब्रह्मज्ञानकी बात पूछी। पूछने वालेका उद्देश्य स्वयं समझना नहीं है, उसको फिर जाकर लोगोंमें जाहिर करना है, सुनाना है। तो स्वयं तो वह ठीक समझेगा नहीं क्योंकि उद्देश्य नहीं है, दूसरेको जाकर समझाया तो या तो शब्दोंको दुहरा देगा या कुछ-न-कुछ अपना नमक-मिर्च ऐसा लगायेगा कि उसमें भूल आजायेगी। इसलिए जो अपना अनुभव किया हुआ है वह समझानेमें तो ठीक समझाया जाता है और जो दूसरोंसे सुनकर समझाया जाता है, वह गलत है।

अच्छा! मंत्र हमेशा आधिदैविक शक्तिके प्रकाशके लिए होते हैं। आधिदैविक शक्ति जो है वह जाहिर कर देने पर फैल जाती है। दूसरी बात देखो, मनमें शक्तिका विकास हो, इसके लिए मंत्र है। जो अपने मन तक सीमित रहेगी वह बात मनको उन्नत करनेमें कार्यकारी हो जायेगी और जो चारों ओर बिखर जायेगी, वह बात अपने मनमें क्रिया नहीं करके लोगोंके बीचमें करेगी। माने वह अपना काम यदि भीतर-ही-भीतर करेगी तब बाहरसे अवरोध भी उस पर नहीं लगेंगे। बाहरके जो प्रतिबन्ध हैं वह उस पर नहीं लगेंगे। जैसे बर्तनको भरनेके लिए नलका पानी है, वह बर्तन भरनेसे पहले ही अगर चारों ओर बिखेरा जाय, तो बर्तन नहीं भरेगा।

तो नारायण, मंत्रकी शक्ति हमारे मनको विकसित करनेके लिए ही होती है और वह फैला देनेके बाद कार्यकारी नहीं होती है। इसलिए प्राय: उपदेशक लोग जो हैं, या प्रचार-प्रसारमें जिनका उद्देश्य है, वे

अपने मनका विकास नहीं कर पाते। लोगोंको केवल बाहर-बाहर माहात्म्य ज्ञान करा सकते हैं।

एक बार नवल-प्रेम-सभाके जो अध्यक्ष थे, वे हमको गौरीशंकर मन्दिरमें ले गये प्रवचन करनेके लिए। तो प्रारम्भमें हमारी खूब तारीफ की कि स्वामीजी ऐसे हैं, ऐसे हैं, और जब मैं व्याख्यान देने लगा तो चाय पीनेके लिए बाजारमें चले गये और फिर हमारा व्याख्यान पूरा होनेसे पहले आ गये और आकर उन्होंने कहा कि क्या अमृत-वचन निकले हैं, हम तो तृप्त हो गये। हमारी भी तारीफ की और व्याख्यानकी भी तारीफ की। उनका काम भी पूरा हो गया और प्रेम-सभाका अधिवेशन भी हो गया। माने प्रचार करके चेला बनाना या अनुयायी बनाना वह उद्देश्य दूसरा है और स्वयं अपनी जिज्ञासा जो है, वेदना जो हृदयमें है, उस पीड़ाको मिटानेके लिए, जो श्रवण-मनन है, वह दूसरी चीज है। यह स्वाध्यायके अंगमें जायेगा। तो स्वाध्याय धर्मका अंग है, वह वेदान्तका अंग नहीं है।

वेदान्तका अंग तो जिज्ञासापूर्वक और अर्थी होकर श्रवण करना है। उसमें दो बात कही गयी है-ग्रहण करनेकी योग्यता भी हो और इच्छा भी हो। जैसे ये वैज्ञानिक लोग जो हैं, महान्यायाधीश आदि इनमें योग्यता तो है बहुत बढ़िया, परन्तु ब्रह्मज्ञानकी इच्छा नहीं है। और, जो विवेकी नहीं हैं, जिनमें विवेक-शक्तिका जागरण नहीं है, जो न्याय नहीं जानते हैं, उनके अन्दर ब्रह्मज्ञानकी इच्छा तो है, परन्तु समझनेके लिए जो योग्यता चाहिए, वह नहीं है। तो अर्थित्व और सामर्थ्य-ब्रह्मज्ञानको चाहना और ब्रह्मज्ञानके समझनेकी योग्यता होना-ये दोनों बात होनी चाहिए। पैसे वाले लोग जो होते हैं, वे समझते हैं जैसे हम व्यापार समझते हैं, वैसे ब्रह्मज्ञान भी हमारी जेबमें, पॉकिटमें रखा जायेगा। वह उनका दुःसाहस ही है-जबतक वह पाना चाहते हैं कुछ और समझना चाहते हैं कुछ! फिर अपनी उम्र बतावेंगे और कहेंगे, 'हमने इतने दिन तक सत्संग किया है।' फिर महात्माओंका नाम गिनावेंगे कि बड़े-बड़े महात्माओंका सत्संग किया है। अरे! तुम चाहते आत्मा-परमात्माको हो नहीं और इतने बड़े

महात्माका संग, इतने वर्षका सत्संग और इतनी पढ़ाई-लिखाई वह किस काम आवेगी? ऐसे धूपमें ही दाढ़ी सफेद हुई है।

ऐसा है कि अयोग्य व्यक्ति जो छोटे पेड़ पर भी नहीं चढ़ना जानता है, वह यदि ताड़के पेड़ पर चढ़नेकी कोशिश करेगा तो गिरेगा ही गिरेगा। इसलिए जिसके मनमें इन्द्रिय-सम्बन्धी नियन्त्रण नहीं है कि अपनी इन्द्रियोंको अन्तर्मुख कर सके, तो यदि अत्यन्त अन्तरंग पदार्थके ज्ञानका प्रयास करेगा, तो असफल ही रहेगा। अरे केवल इन्द्रियोंको खाली रखे, विषयोंको ग्रहण न करे, इतना तो सामर्थ्य नहीं है और वह इन्द्रिय शक्तियोंको बिलकुल प्रत्यगात्मामें लगाना चाहे तो अभी बाहर तो कुछ छोड़ ही नहीं सकता तो भीतर कैसे लगावेगा? इसलिए सुननेसे एक पुण्य होता है, एक संस्कार होता है-यह बात तो हम मानते हैं। एक अच्छी बात सुनते हैं, एक अच्छा संस्कार पड़ता है। यह भी एक आइडिया बनता है कि यह भी एक अच्छी चीज है, समझनेकी चीज है। इसके अलावा यह जो लाउडस्पीकर और पर्चे लगाकर जो वेदान्त सुनाते हैं, इनका इसके सिवा और कोई उद्देश्य नहीं होता है कि हमारे ये उपदेशक बड़े भारी जानकार हैं तो इनका शिष्य होना बहुत अच्छा है, चेला बनानेमें मददगार है।

तो, देखो! अपने अन्दर हीनताका भाव बिलकुल नहीं आना चाहिए कि हम इसके अयोग्य हैं किसी भी कारणसे उसको ऐसे छोड़ना चाहिए-हाथ जोड़कर भगवान्‌के सामने '**पापोऽहं पापकर्माऽहं**' मैं पापी हूँ, पापकर्म करता हूँ और फिर उसके बाद दूसरा भाव करे कि भगवान्‌के सामने अपनेको पापी स्वीकार कर लेनेसे मेरे पाप मिट गये। यदि यह नहीं आता है मनमें तो पापी स्वीकार करना ही व्यर्थ है। तो अहं पापी पापोऽहंके तत्काल बाद, निष्पापोऽहं इत्याकारक वृत्तिका उदय होना चाहिए। जो जिन्दगी-भर स्वयंको पापी ही पापी दोहराता है वह इस साधनाका अधिकारी नहीं होगा।

एक बार भगवान्‌का नाम लेनेके बाद भी हमारा पाप नहीं जला-ऐसा भगवान्‌के नामकी अवज्ञा करनेवाला पुरुष साधनाके मार्गमें

अग्रसर नहीं हो सकता है। वहीं-का-वहीं रहेगा, जिन्दगी भर। *'मैं मूरख खल कामी'*-यही उसकी स्थिति हो जायेगी। भगवान्‌के नाममें, लीलामें, गुरु, मंत्र-किसीमें ऐसा सामर्थ्य नहीं मानता है। अपने पापकी पकड़ उसको ज्यादा है और गुरुमंत्रकी पकड़ कम। तो हीनताका भाव मिटाना ही चाहिए। गोस्वामीजी कहते हैं-

कीजै मोहि जम जाचना महिं

हमको बिलकुल-जैसे नरकाकार हो गया हूँ-ऐसा कर दीजिये। इसका मतलब यह है कि जब हमने भगवान्‌से यह प्रार्थना की तो उन्होंने कहा कि नहीं बेटा, नहीं! तुम तो हमारे हृदयसे लगने लायक हो।

देखो, जब कोई कहता है न, 'हम नीचे बैठेंगे।' तो हम कहते हैं, 'नहीं-नहीं, ऊपर बैठो।' तो जब भगवान्‌के सामने कोई नीचे बैठकर प्रार्थना करता है, तो चूँकि भगवान् बड़े शिष्ट हैं, सभ्य हैं, वे उसको अपने बराबर बैठानेका प्रयास करते हैं।

तो, हीनताका भाव न हो। और अपनी पवित्रताके लिए यह जो त्रिवक्रा है, भीतर, कुब्जा टेढ़ी कुण्डलिनी शक्तिकी गति-शक्ति हमेशा टेढ़ा चलती है बाँयें-दाँयें, बाँयें-दाँयें, सीधा कभी नहीं चलती इसको भी भगवान् सीधी करते हैं। तो इस कुण्डलिनी शक्तिमें-से ऐसा बलका और प्रकाशका आविर्भाव हो रहा है, जिसमें हमारी नस-नस परिव्याप्त हो रही है-ऐसा भाव, ऐसा चिन्तन होना चाहिए। अच्छा, इससे अपने कर्मोंका स्मरण छूटेगा और आत्मशक्तिका आविर्भाव होगा।

सूर्यमण्डलसे ज्योतिर्मयी अमृतधारा गिर रही है। भगवान् शंकरकी मूर्तिसे गंगाजलकी सात्त्विक-धारा बह रही है। विष्णु भगवान्‌के चरणारविन्दसे गंगाजी निकल रही हैं और उसमें हमारा अन्तर और बाहर दोनों प्लावित हो रहे हैं। तो ये अपनी पवित्रताका जो चिन्तन है-हीनताके भावका निवारण और पवित्रताका चिन्तन। जैसे अपने प्रियतमसे मिलनेके लिए जाते हैं, तो अपने शरीरको स्वच्छ करके, बढ़िया वस्त्र धारण करके कि उनको हमारे पसीनेसे हमारी दुर्गन्धसे कोई असुविधा नहीं होगी-ऐसा अपनेको करके उनके पास

जाते हैं। ऐसे परमात्मासे मिलनेके लिए अपनेको निष्पाप करके जाना पड़ता है। यह उसकी पहली भूमिका है।

अच्छा; और फिर यदि भगवान् अपने साथ ही रख लें तो? हम गये तो थे चोरीसे मिलनेके लिए, घण्टे भरके लिए, आधे घण्टेके लिए। लेकिन, हमारा उदार प्रियतम हमसे यह कहता है कि अब तुम हमेशाके लिए हमारे पास रह जाओ, अपने घर लौटकर मत जाओ। तो उस समय हमारी क्या स्थिति होगी? तो; यह सोच लेना चाहिए कि अब हम जा रहे हैं बस! खुश रहो, अहले वतन! हम तो सफर करते हैं। दुनिया तो अपनी मौजमें रहे, हम तो भगवान्के पास जा रहे हैं और यदि हमें नहीं लौटायें तो अब दुनियामें हमारा कोई ऐसा काम फँसा हुआ नहीं है जिसको करनेके लिए हम लौटकर आयें।

संसारमें प्रत्येक सच्ची चीज सच्ची नहीं है। वह बार-बार दोहराई हुई ही है। यह हम लोगोंने भी आप लोगोंके मनमें जो चीज बैठानेकी कोशिश की है वह बार-बार दुहराकर ही की है। सुनते-सुनते, सुनते-सुनते माहात्म्यमें दृढ़-निष्ठा हो गयी है। नहीं तो कहाँ स्वर्ग, कहाँ नरक? किसने देखा है? अरे सुनते-सुनते तो मान बैठे हैं सारे। इसीसे यह साधनाकी जो स्थिति है वह शब्दोंसे दुहरा-दुहराकर होती है। क्रियासे जो दोहराओगे तो विक्षेप ज्यादा होगा और शब्दोंसे दोहराओगे तो विक्षेप कम होगा और भावसे दोहराओगे तो मजा आयेगा, प्रिय हो जायेगा और जिसमें बिलकुल दोहरानेकी जरूरत ही नहीं पड़ती है वह क्या है?-जो चीज बार-बार कहनी पड़ती है-उसमें कुछ संशय या असत्य अवश्य है-**'रामो द्विर्नाभिभाषते'**-रामजी कोई बात कहते हैं एक बार, दूसरी बार बोलनेकी जरूरत नहीं।

ईश्वरमें यदि नास्तिक्य न हो तो वह ईश्वर नहीं हो सकता। माने यदि वह अपने सिवा दूसरेको ईश्वर देख रहा है तो वह छोटा ईश्वर हुआ और उससे बड़ा ईश्वर एक दूसरा है, जिसका वह भजन करता है। तो यही ईश्वरका जो नास्तिक्य है, वह बुद्धावतारके रूपमें स्वीकार किया गया है। ईश्वरका जो नास्तिकांश है, वह बुद्धावतारके रूपमें आया, माने

वह भी वैज्ञानिक ही है, तात्त्विक ही है।

अच्छा जी! इसके बाद, आसन एक रहे तो बहुत बढ़िया। इसमें ऐसा है कि यदि घरमें रहते हैं तो स्थान भी एक होना चाहिए और वह पवित्र होना चाहिए। माने वहाँ खान-पान-शयन यह सब न हो, केवल भजनके लिए ही स्थान रहे तो अच्छा है। अच्छा, टाइम भी एक रहे तो वहाँ बैठते ही मन तन्मय हो जाता है कि भई यह स्थान, यह समय और किसी कामके लिए नहीं है। जिस कपड़े पर, जिस आसन पर बैठें, वह आसन भी पवित्र होना चाहिए। दूसरेके कपड़ेमें जो प्रभाव होता है, वह सम्भव है हमारी साधनाके संस्कारके विपरीत हो। इसलिए जला हुआ भी नहीं होना चाहिए और सिला हुआ भी नहीं होना चाहिए और पराया भी नहीं होना चाहिए। सिला हुआ जो होता है वह धुलता नहीं ठीक।

सच पूछो तो चित्तकी ग्रन्थि भी हमको स्वीकार नहीं है, चोटीकी ग्रन्थि स्वीकार नहीं है। जनेऊकी ग्रन्थि भी स्वीकार नहीं है। ग्रन्थिके प्रति, गाँठके प्रति, इतनी विमुखता हो जाय कि हमको किसी तरहकी गाँठ पसन्द नहीं आये। मनमें गाँठ, दुश्मनकी गाँठ, दोस्तकी गाँठ। गाँठके प्रति अपना जो वैमुख्य है यह चिज्जड़-ग्रन्थिके प्रति वैमुख्य होनेमें मददगार होता है। दूसरी गाँठ जोड़ी, जैसे गृहस्थ है न, उसमें पति-पत्नीकी गाँठ जोड़ी गयी है। वानप्रस्थ है उसमें दोनोंकी गाँठ नहीं, उनके घरमें दोनोंकी गाँठ नहीं है लेकिन साथ हैं। संन्यासीमें दोनों अलग हैं। अच्छा, जिसको यह मालूम रहता है कि अन्तमें हमको छोड़ना ही है, जीवनकालमें भी उसको आसक्ति नहीं हो सकती। ढोंग न करता हो तो बड़ी दिलचस्पीसे मकान बनाकरके एक हजार वर्ष तक यह मकान रहेगा, अपने दस वर्ष लगाये उसने और जहाँ यह ख्याल आया कि हमको तो पच्चीस वर्षके भीतर ही छोड़ देना है वहाँ यह होगा कि एक हजार वर्षके लिए अपने लड़के-पोते बनायेंगे। उस समय डिजाइन क्या होगी, साइज क्या होगा, उस समय शक्ल-सूरत क्या होगी? तुम्हें अपने बापका मकान पसन्द ही नहीं आया, बिना खिड़कीका है और हवादार नहीं है, अब तुम्हारा बनाया हुआ मकान,

तुम्हारे बेटेको पसन्द आयेगा–यह सोची हुई बात बिलकुल गलत है। उसको अक्ल होगी तो बनायेगा।

जिसके मनमें आगे त्यागका संकल्प है उसका वर्तमान–काल अनासक्त होता है। तो इसलिए संन्यासकी जो परिकल्पना है जीवनमें, वह संन्यासी होने पर सुखी होनेके लिए नहीं है। बल्कि जिसके मनमें संन्यासी होनेका संकल्प है उसका वर्तमान–काल अनासक्त होता है। तो; इसलिए संन्यासकी जो परिकल्पना है जीवनमें, वह संन्यासी होने पर सुखी होनेके लिए नहीं है। बल्कि जिसके मनमें संन्यासी होनेका संकल्प है, उसको सुखी करनेके लिए है।

अच्छा, तो स्थान–स्वच्छ, आसन–स्वच्छ और शरीर पर धारण किये हुए वस्त्र भी स्वच्छ और शरीर भी स्वच्छ और वह समय बिलकुल निश्चित। अब देखो! आसनका जो रूप है, वह भी यदि निश्चित हो तो निष्ठामें वह मदद करेगा। यह नहीं कि चाहे जैसे बैठे। कबीर–साहबको पचास–वर्ष भजन करनेके बाद मालूम पड़ा कि–

सोवत बैठत पड़े उताने। कहै कबीर हम वही ठिकाने।।

और, तुमको आज ही मालूम पड़ गया! तो उनका पचास वर्ष बेकार ही गया न! तुमको तो आज ही वह स्थिति हो गयी और कबीर साहबको तो वह स्थिति प्राप्त करनेमें पचास वर्ष लगे। तो आसनमें जैसे सिद्धासन है, यह सुगम है। स्वस्तिक आसन भी सुगम है, पद्मासन भी सुगम है। यह जो जाकर लोगोंमें बता देते हैं कि नहीं–नहीं इन बातोंका कोई–खास महत्त्व नहीं है, वह साधनमें आगे नहीं बढ़ाते हैं। वह उसको परिश्रमसे बचाकर, जो परिश्रम नहीं करना चाहता है, और जिसके मनमें कमजोरी है, उस कमजोरीसे फायदा उठाकर उसका गुरु बनना चाहते हैं।

●

प्रवचन : 3

कल 'आसन' पर चर्चा चल रही थी। तो देखो! अगर तीन घण्टे तक लगातार कोई इस तरहसे बैठ सके कि उसकी पलक भी न हिले, तो उसकी समाधि लग जायेगी। श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज यह बात कहते थे। हम इस सम्बन्धमें इतने सावधान हैं कि अगर एक बार हम उनका नाम ले लेंगे तो इसका मतलब ही है कि बिलकुल ठीक है। हम तो समझते हैं कि धुला हुआ वस्त्र रोज पहन लें तो चल सकता है। और, रोजका पहना हुआ अगर रख देंगे तो रखनेके समय भी जो उसमें हवा और धूल पड़ती है उसके भी संस्कार पड़ते हैं। परन्तु यदि रेशमी वस्त्र हों जिन पर धूल आदिके संस्कार नहीं पड़ते हैं, वे हों तो रखे हुए भी चल सकते हैं। पूजाघरसे उनको बाहर न लाया जाय। जो पूजाका घर है वहीं रखे रहें और समय-समय पर उनको साफ भी कर लिया जाय। ऊनी कपड़ा हो तो उसको हवामें फटकार देनेसे साफ हो जाता है। सूती वस्त्रको धो दो।

श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णके ध्यानकी जो प्रक्रिया है उसमें यह वर्णन है कि वे सबेरे हाथ-पाँव और मुँह, पंच-पवित्र करके ध्यान करने बैठ जाते थे और स्नान बादमें किया करते थे। यदि शौच आदिकी भी आवश्यकता न हो तो अच्छा है और यदि लगा हो तो जरूर जाना चाहिए, नहीं तो लघुशंकाका, शौचका ध्यान आयेगा। सबेरे उठकर बहुत खटपट करनेमें मन विक्षिप्त हो जाता है। इसलिए एक बार जो ध्यानकी प्रक्रिया है वह सबेरे कर ली जाय और बादमें स्नानादि करके अपना जो चन्दन-वस्त्र आदि और संस्कार हैं शरीरके, वह बादमें करने चाहिए। पहले ही मनको विक्षिप्त करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

देखो! एक आदमी बैठा ध्यान करने और उन्होंने दस-हजार रुपयेकी कोई चीज सड़कके उस तरफ रख दी। अब ध्यान करने बैठे तो बार-बार आँख खोलकर देखे कि वह वहाँ है कि नहीं? तो जो लोग अपनी कीमती वस्तुएँ, जिनको वह कीमती समझते हैं, उनको दुनियामें

बाहर बिखेर करके बैठते हैं तो उनके ध्यान करनेके लिए बैठने पर बारम्बार उनका स्मरण होता है। रिश्तेदारोंका स्मरण होता है, उन चीजोंका स्मरण होता है। इसलिए बाह्य सम्बन्ध जितना शिथिल होगा, उतना अधिक ध्यान लगेगा, बेटोंको सँभलवा दीजिये, ठीक है। थोड़े दिन तक फिक्र आवेगी कि पता नहीं बेटा सँभालेगा कि नहीं। परन्तु जब वे अपनी जिम्मेवारी ले लेंगे और कहेंगे कि पिताजी आप फिक्र क्यों करते हैं, तब फिर मन इधरसे हट जायेगा।

तो, चित्तकी एकाग्रताका उपाय यही है कि बाह्य पदार्थोंके प्रति जो आकर्षण है, आसक्ति है और सम्बन्ध है, वह जितना शिथिल पड़ेगा उतना चित्त अपने स्वरूपमें बना रहेगा। पड़ोसीके घर जानेकी क्या जरूरत है? अपना घर छोड़कर दूसरेके घरमें जानेमें दो ही कारण हो सकते हैं-या तो अपने घरमें कोई तकलीफ हो या दूसरेके घरमें कोई मजा हो। यह जो हमारे मनीराम यहाँसे वहाँ डाँवाडोल होते हैं न! लड़की अपनी सहेलीके घरमें रहती है तो समझ लो वहाँ कुछ-न-कुछ तो ऐसा मिलता है जो अपने घरमें हम लोगोंके सामने नहीं मिल सकता है। वहाँ सहेलीका कोई दोस्त होगा जो उससे आकर वहाँ मिलता होगा। बिलकुल यह बात पक्की है। बारम्बार वहाँ क्यों मजा आता है? क्यों जाते हो? तो अपने घरकी तकलीफ, दूसरेके घरका मजा-यही चित्तको विक्षिप्त करता है। और, दोनोंको छोड़ दो, तो कहीं कोई आने-जानेकी जरूरत नहीं। जो तुम छीन सकते हो उसको हम छोड़नेके लिए तैयार हैं। अब इनकमटैक्सका अफसर हमें कैसे दुःखी करेगा। सरकार हमको कैसे दुःखी करेगी? जो तुम छीन सकते हो, उसके लिए हम हाथ उठाये हुए पहलेसे हैं, ले जाओ। अच्छा! तुम्हारे शरीरको ही ले जायेंगे जेलमें। बहुत बढ़िया। हमारी ऐसी एकान्त तपस्या होगी। इसलिए उनको दुःख होता है, जो इसके लिए तैयार ही नहीं। वहाँ तो भिक्षा भी नहीं माँगनी पड़ेगी, साधुके लिए बहुत बढ़िया, समझो रोटी अच्छी नहीं मिलेगी तो थोड़ी खायेगा। केवल जीवन निर्वाहके लिए।

नारायण, यह भीतर जो बैठना है, वह तभी सम्भव है जब

बाहरका आकर्षण और बाहरकी आसक्ति और बाहरके सम्बन्ध, कम होंगे। यह जितने कम होंगे उतना ही मनुष्य अपने अन्दर बैठ सकता है।

एक दिन मैं सपनेमें एक महात्माका दर्शन करने गया। विपिन बाबू हमारे साथ थे। महात्माका नाम हम नहीं बतायेंगे। तो जाने पर हमारा उनका जो संवाद हुआ–उसमें हमारा कहना था कि समाधि नामकी जो चीज है, वह वास्तवमें नहीं है, यह लगती-वगती नहीं है। लोगोंको ऐसा लगता है कि समाधि लग गयी है। अभ्यासजन्य सुषुप्ति है। तो महाराज! महात्माजी नाराज हो गये और उन्होंने हमको पकड़कर पहले तो गाली सुनायी, फिर हमको पटक दिया धरती पर और हमारा यह जो गला है वह दबाया सपनेमें। हमारी तो समाधि लग गयी। हमको तो पहले बड़ा भारी आनन्द आने लगा, और आनन्द आया, उसके बाद चित्त शान्त हो गया। फिर जब हमारी सपनेमें समाधि टूटी तो उन्होंने कहा कि क्यों समाधि लगी? मैंने कहा, नहीं इसमें पहले तो सपने सरीखा आनन्द था, फिर सुषुप्ति सरीखा अभान था, फिर ये समाधि काहे की? यह तो तुमने हमारा गला घोंट दिया, इसमें समाधि काहे की है?

देखो! अभ्याससे अगर बैठे-बैठे जाग्रत् अवस्थामें सुषुप्तिका ठीक-ठीक ध्यान हो जाय, तो उसका नाम समाधि है और यदि हम एक नया स्वप्न बनाकर उसमें डूब जाँय, उसमें भी जाग्रत्-अवस्था भूल जाती है। सपनेमें यही होता है न कि जाग्रत्के दृश्य भूलकर हम स्वप्नके दृश्यमें तन्मय हो जाते हैं। तो यदि जाग्रत्-अवस्थाके दृश्यको भूलकर एक कल्पित स्वप्न, एक ईश्वर सम्बन्धी कल्पित स्वप्न हम उत्पन्न कर सकते हैं–बिलकुल ठीक-ठीक स्वप्न तो उसका नाम गोलोक है, वैकुण्ठ है, लीलानुभूति है। श्रीकृष्णका दर्शन है। ईश्वर स्वप्नालम्बन चित्त-वृत्तिका नाम लीलानुभूति है। बाह्यका विस्मरण हो जाना चाहिए। अभ्यासजन्य सुषुप्तिका नाम समाधि है और प्राकृत-समाधिका नाम सुषुप्ति है। प्राकृत-समाधिको सुषुप्ति कहते हैं, अभ्यास-जन्य सुषुप्तिको समाधि कहते हैं।

अब आप देखो, इसके लिए यदि आलम्बनकी आवश्यकता होगी, तो सबसे उत्तम आलम्बन होगा शब्दका। वह शब्दका धक्का हमारे मनको एक रेखामें रेखांकित कर देगा। हमारे तो सच्चिदानन्द-घन ब्रह्मके सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं है। उसमें जब कोई विशेष उत्पन्न होता है, तो हमारी मानसिक रेखाओंसे ही होता है। स्वर्णमें चाहे आप मुहर बना लीजिये और चाहे आप साँप बना लीजिये, चाहे वैकुण्ठ नायक बना लीजिये, है तो वह सच्चिदानन्दघन। उसके उपादानमें कोई अन्तर नहीं है। परन्तु, हम शेषशय्या भी मानसिक रेखा द्वारा बनाते हैं और उनके लिए थालमें जो भोगकी सामग्री रखते हैं, वह भी मानसिक ही है।

तो, एक ही सच्चिदानन्दघन धातु है, जिसमें नारायण रेखांकित हुए हैं, शेष-भगवान् रेखांकित हुए है और वह थाल-रेखांकित हुई हैं, उसमें फूल-फल रेखांकित हुए हैं। वे बिलकुल मानसिक रेखासे अंकित हुए हैं, इसलिए जब हम चाहें, तब हम सच्चिदानन्दघनमें अपने मनसे एक रेखा-सी खींच कर देख लें कि ये साक्षात् भगवान् ही प्रकट हुए हैं। और, जहाँ रेखा नहीं खींचेंगे, वहाँ भी उपादान एक ही सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है।

चाहे तो शब्दसे लय करो। यह भी एक प्रक्रिया है-पृथ्वी गयी जलमें, जल गया अग्निमें, क्रम कर दो। वैसे देखो, क्रमसे कोई पैदा नहीं होता है। सोनेमें पहले आगकी तस्वीर बनायी गयी कि पहले समुद्रकी तस्वीर बनायी गयी! सोना तो सोना ही है। तो चाहे पहले समुद्र बना लो, चाहे आग बना लो। यह आँधी चल रही है और पेड़-पौधे हिल रहे हैं। क्या है, समुद्रमें? अपने मनको जैसा बनाकर रोक लो। बारम्बार-बारम्बार-बारम्बार-बारम्बार-जैसे फिल्ममें फिल्मायी हुई जो चीज है, वह बार-बार आती है, पर मालूम पड़ती है एक। उस पर गौरसे देखो, जो आदमी उस पर दीख रहा है, वह हिलता हुआ है। तो इसी प्रकार अपने मनके द्वारा फिल्माकर हम सच्चिदानन्दके पर्दे पर तस्वीर देख रहे हैं। इसमें एकदम स्वातन्त्र्य है, आप जब चाहें तब सीता देख लें, राम देख लें, लक्ष्मण देख

लें, धनुष-बाण देख लें, हनुमान देख लें। इसमें बिलकुल आपका स्वातन्त्र्य है। और, आप अपनी वासनाकी चीजोंको छोड़ नहीं सकते हैं, बस यही उसमें रुकावट है। जो वासनाएँ भर गयी हैं, वह छूटती नहीं हैं।

अब इसका रहस्य बताते हैं। वह सबको मालूम नहीं है। रहस्य यह है कि कोई भी एक दृश्य यदि दो मिनट तक लगातार बना रह जाय तो वह दृश्य गायब हो जायेगा, केवल द्रष्टा ही रहेगा। यह नहीं है कि हम दृश्यको देखते रहेंगे। यदि दृश्य एक रहेगा तो द्रष्टा और दृश्यमें भेद कहाँसे रहेगा? भेदक क्या होगा? या तो ये संसारी लोगोंने अपने द्रष्टापनेको खोकर दृश्यमें अपनेको मिला दिया है। या तो जब दृश्यको अपनेसे अलग करेंगे तो दृश्य अपनेको खोकर द्रष्टामें मिल जायेगा। यह जो हम देख रहे हैं-हम तो दृश्यको देखते रहते हैं, देखते रहते हैं-यह बकवाद है। देखते रहना माने क्या? कालकी धारामें, जैसे-जैसे काल जा रहा है पीछेकी ओर, और हम जा रहे हैं आगेकी ओर तो जैसे झूलेकी गति बिहारीजीमें मालूम पड़ती है, वैसे कालकी गतिको देखते रहना, माने बहता है काल और हम अपना कालमें रहना मानते हैं। तो इसका अर्थ यह हुआ कि दृश्य और द्रष्टा दोनोंका आधार काल हो गया। दृश्य बहता है और द्रष्टा देखता रहता है। उसका रहना कालमें है कि नहीं है? तो ईश्वरका रूप ऐसा विलक्षण है कि उसमें चेष्टाका ही नाम काल है। भागवतमें तो कई जगह है-ईश्वरकी चेष्टाका नाम काल है। ईश्वरके निमेषका नाम काल है। ईश्वरके प्रभावका नाम काल है। तो जो यह समझते हैं कि एक दृश्य हम घण्टे-भर तक देखते रहे वह बिलकुल भ्रम है, न एक दृश्य घण्टे भर दीखता है, न एक द्रष्टा देखता है। वह तो घण्टा ही काल है। कालको आधार बनाकर हम द्रष्टा हैं, वह दृश्य है। इसलिए जहाँ कालका विवेक हुआ वहाँ द्रष्टा और दृश्यका विभाग मिट गया। विभाग गुण है। विभाग द्रव्य नहीं है।

यह हाथके द्वारा आकाशके कितने हिस्से दीखते हैं। आप देखो! तो यह तो आकाशका विभाग हाथके द्वारा हुआ, यह हाथकी उपाधिसे विभाग हुआ है। यह जो द्रष्टा और दृश्यका विभाग है, यह दिक्तत्त्व

द्रष्टा-दृश्य दोनोंसे सूक्ष्म समझने पर है। दिक्तत्त्वको, देशको, स्थानको, जो स्पेस है न, यह यदि द्रष्टा और दृश्य दोनोंसे सूक्ष्म होगा, तब दोनों अलग-अलग हैं और दोनों वस्तु होंगे, तो अलग-अलग होंगे। और दृश्य कालमें बदल रहा है और हम कालमें रह रहे हैं, इसके माने ही हुए कि हम कालमें रह रहे हैं। इसलिए दृश्य और द्रष्टाका ठीक-ठीक विवेक नहीं हुआ। अब देखो इसका नतीजा क्या निकला? यह मैंने रहस्यकी बात बतायी है। एक दृश्य एक क्षण तक नहीं रह सकता। वह तो बदलता जा रहा है। हम लोग उसको न बदलता हुआ समझते हैं, बस पिक्चर है सिनेमाका। परन्तु देखनेवाला भी पिक्चरमें तब हो जायेगा, जब वह यह देखेगा कि पिक्चर बदल रहा है और मैं रह रहा हूँ। असलमें दृष्टिमें द्रष्टा और दृश्यका, दृङ्मात्रमें द्रष्टा और दृश्यका विभाग नहीं है।

हाँ, कहनेका अभिप्राय हमारा यह था-चाहे साकारका ध्यान हो, चाहे निराकारका ध्यान हो, वह एक ही हालतमें ले जाकर डालेगा। तो यदि वह समझसे होगा, तब तो स्वरूपका बोध हो जायेगा और यदि समझसे नहीं होगा, तो स्थिति हो जायेगी। स्थायी-भावसे बनेगी निष्ठा और आवरणका भंग होगा, अविद्याकी निवृत्ति होगी समझदारीसे। इसलिए धर्मनिष्ठा, भक्तिनिष्ठा, योगनिष्ठा-ये सब ब्रह्मनिष्ठामें मददगार हैं और, जो द्रष्टा-दृश्यका विवेक है और जो तत्पदार्थ, त्वंपदार्थका शोधन है वह अविद्याकी निवृत्तिमें उपयोगी है।

× × ×

प्रश्न-ध्यान करते समय अगर नींद आने लगे तो क्या करें?

पू. महाराजश्री-थोड़ी देर सो जाना चाहिए। अच्छा, सोते समय एक सावधानी अगर बरती जाय कि अब हमने भगवान्‌के चरणोंमें अपना सिर रख दिया और वहीं सो रहे हैं। माने अपने प्रिया-प्रियतमके पास सो रहे हैं, उनके चरणोंमें सिर रखकर नींद आने दो। भजनमें नींद आना कोई हर्ज नहीं और ज्यों नींद टूटे और होश आवे, त्यों यह ख्याल होना चाहिए कि हम प्रिया-प्रियतमके चरणोंमें ही जग

रहे हैं। बस, यदि आदि और अन्तको प्रिया-प्रियतमके साथ जोड़ दो तो मध्य जो है अपने आप ही भूल जायेगा। इसलिए भजनमें सोना कोई विघ्न नहीं है।

सोनेके आदिमें भगवान्‌की गोद या भगवान्‌के चरणारविन्द और सोनेके अन्तमें वहीं जागना। नींदसे यदि लड़ोगे तो न तो ध्यान होगा न नींद हटेगी। बात तो वही हुई-नींद आने पर भगवान् छूट जाते हैं, लड़ाई करनेमें भगवान् छूट गये, तो लड़ना नहीं। नींद आयी? हाँ आयी। अच्छा, भगवान् अब कोई ऐसी लीला करना चाहते हैं, जो हमारे देखने लायक नहीं है। अब लोग कुछ गड़बड़ करना चाहते हैं। भीतर-ही-भीतर भगवान्‌के चरणोंमें आँख बन्द करके सो गये। और फिर जब नींद टूटी बोले-आहा! तो हँस रहे हैं और बोले अभी और सो जाओ। अभी थोड़ा और सो जाओ, बोले, अभी थोड़ा और कोई काम बाकी रह गया हो। यह सिद्धका जो लक्षण होता है न वही साधकके लिए साध्य होता है। साधन वही है जो सिद्धका लक्षण है, वह साधकका साधन है। बिलकुल नहीं डरना चाहिए। ब्रह्मचिन्तन करते समय भी नींद आती हो तो-यही सोचना चाहिए कि अब हम सुषुप्तिमें या प्रकृतिमें नहीं, ब्रह्ममें लीन हो रहे हैं और उठनेके साथ ही आप ब्रह्ममें-से हमारा उत्थान हुआ है, हम डुबकी लगाकर उठे हैं, यह ख्याल कर लें।

देखो, एक साधना है, शंकराचार्यजीने लिखी है। वह यह है कि जब आप पलंग पर सो जायें रातको, तो अपने शरीरके छः विभाग कर लें। मिट्टीका विभाग है पाँवके अँगूठेसे लेकर मल स्थान-पर्यन्त एक विभाग, और मलस्थानके ऊपर जलस्थान है, जहाँसे लघुशंका निकलती है और उसके नीचे नाभिचक्रमें अग्नि स्थान है जहाँ पाचन होता है। अच्छा, उसके बाद-पेटसे हृदय-पर्यन्त जो है यह वायुस्थान है प्राणका केन्द्र है। उसके बाद आकाशका स्थान है गले तक और उसके ऊपर मनका स्थान है। कान-नाक-आँख-जीभ-त्वचासे मनका स्थान है। ये छः विभाग कर लें। फिर सोचें कि मिट्टीवाला स्थान पानी वालेमें

आगया, लीन हो गया। मिट्टी पानीमें लीन हो गयी। और पानीवाला स्थान आग वालेमें आगया। आगवाला स्थान वायुवालेमें आगया और वायुवाला आकाशवालेमें आगया, आकाशवाला मनवालेमें आगया। अब जरा मन चमक रहा है, दमक रहा है। उसमें कभी सुन्दरता झलक जाती है, कभी सुगन्ध आजाती है, कभी स्वाद आजाता है, कभी शब्द आजाता है। बोले नहीं-केवल ज्ञान-मात्र। बुद्धिकी प्रधानता हो और इसके बाद अपना स्वरूप है। तो अपने स्वरूपमें स्थित होकर सो गये, लीन हो गये। ये सब अपने स्वरूपमें लीन हो गया लेकिन; इसके साथ-साथ जब नींद टूटे-अगर आप दस-ग्यारह बजे, बारह बजे ऐसा करके सो जायेंगे तो जब नींद टूटे तो उस समय सावधान रहना चाहिए कि नींद टूटते ही हम आत्मासे मनवाले विभागमें उतरते हैं। वहाँसे आकाशमें, वहाँसे वायुमें, वहाँसे अग्निमें, जलमें, पृथिवीमें, सारे शरीरमें व्याप्त हो जाते हैं, अब व्यवहार करेंगे, तो यह पलंगका सोना नींद नहीं होगी, धीरे-धीरे समाधि हो जायेगी। इसको दो नम्बरकी साधना मानते हैं, एक नम्बरकी तो नहीं है। लययोग है।

अब इसको चाहे तो परमेश्वरमें लीन हो गये ऐसा सोच सकते हैं, तो भक्तियोग हो जायेगा, शरणागति हो जायेगी।

अच्छा, गुरुमें लीन हो गये, ऐसा भी सोच सकते हैं; क्योंकि बुद्धि जो है उसमें गुरुतत्त्वका प्रकाश होता है। यह सिर जो है वह गुरुका स्थान है और हृदय जो है वह इष्ट देवताका स्थान है। अपने आपमें ही लीन हो गये-यह योग हो गया। अपने आपमें लीन होना, माने दूसरेको न देखना। प्रायः ज्यादातर लोग व्यवहारमें भी अपने आपमें लीन होते हैं। जो दूसरेकी सुख-सुविधा नहीं देख पाता है, वह अपने अहंमें लीन है। तो देखो, मंत्र वाली बात इसमें जुड़ी हुई है। आप यदि ऐसी क्रिया नहीं कर सकते हैं या भाव नहीं कर सकते हैं, तो इसके बोधक शब्दोंको दुहराते जाइये, दुहराते जाइये और वे शब्द भाव भी प्रकट कर देंगे क्रिया भी करा देंगे और स्थिति भी पैदा कर देंगे। क्योंकि शब्द सबसे सूक्ष्म होता है।

मंत्र परावाक् रूप है। जो सृष्टिका प्रथम-स्पन्दन है वहाँ शब्द है। इसलिए सृष्टिमें सूक्ष्मसे सूक्ष्मतम जो तत्त्व है, उसके मूलमें शब्द है। तो मंत्र-योग जो है, वह वहाँ ले जाकरके धीरे-धीरे-धीरे यह स्पष्ट करता है कि कहाँसे मंत्रका उदय हो रहा है। जीभ पर मंत्र है कि कण्ठमें मंत्र है कि हृदयमें मंत्र है कि नाभिमें मंत्र है कि मूलाधारमें मंत्र है। गहराईमें उतारना मंत्रका काम है एक, और इष्टमें पहुँचाना माने ऊपर ले जाना भी मंत्रका काम है और नीचे ले जाना भी मंत्रका काम है। तो परावाणीके क्रमसे जो साधना होती है, वह गहराईमें ले जाती है और इष्टदेवके ध्यानसे जो साधना होती है वह ऊपर ले जाती है। और, दोनों जगह एक ही परमेश्वर अगर न हो तो ? यदि परमात्मा ऊपर भी न मिले और नीचे भी न मिले तो, वह परमात्मा ही नहीं है। इसलिए बीचमें स्थिर हो जाओ हृदयमें-यह धारणा है। तो, वहाँ भी परमात्मा, नीचे चले जाओ मूलाधारमें तो वहाँ भी परमात्मा। ऊपर चले जाओ-सहस्रार, समना और उन्मना ये बारह चक्र शैवलोग मानते हैं-इनमें-से सबसे ऊपर वाले चक्रमें चले जाओ तो वहाँ भी परमात्मा। जहाँ तुम हो वहाँ परमात्मा है। लेकिन वहाँ तुम बैठ नहीं पा रहे हो-बस, इतनी-सी बात है। जहाँ पहुँचोगे, वहाँ भी परमात्मा है-ऊपर या नीचे और जहाँ हो, वहाँ भी परमात्मा है, लेकिन जहाँ हो, वहाँ बैठ नहीं पा रहे हो। इधर-से-उधर डाँवाडोल हो रहे हो। हमने पहले कभी त्रैलोक्य-मंगल-कवचका अनुष्ठान किया, पाठ किया था, उसका फल भी यही बताया गया है कि यह जो अहं पर चोट सह सकता है, वही बैठ सकता है। जो चेला अपने अहंको प्रधान करेगा, वह नहीं बैठ सकेगा। जबतक सारा शरीर बाँधकर सिर पर पाँव नहीं मारा जायेगा। तबतक ठीक नहीं होगा।

●

प्रवचन : 4

हम किसलिए जप कर रहे हैं? अन्तःकरणकी शुद्धिके लिए या भगवत् प्रीतिके लिए-ये दो अलग-अलग विभाग हैं। दो विभाग यानी कर्त्तव्यका उल्लंघन करनेसे प्रत्यवाय लगेगा-उस प्रत्यवायसे बचनेके लिए जप करते हैं अथवा संध्यावन्दनमें जो गायत्रीका जप है, वह प्रत्यवायसे बचनेके लिए है। क्योंकि उसका जप यदि नहीं करेंगे तो न करनेका पाप लगता है। बात यह है कि न करनेसे पाप कभी नहीं लगना चाहिए। किसी भी पदार्थका अभाव फलके उत्पादनमें समर्थ नहीं है। अभावसे फलकी उत्पत्ति नहीं होती। परन्तु गायत्रीका जप न करना अभाव नहीं है, वह उल्लंघन है। क्योंकि वह नित्य-विधि है, करनेसे यही लाभ है कि प्रत्यवायकी उत्पत्ति ही नहीं होगी। देखो, कोई उत्सव हो और उसमें न जायँ तो यही समझा जायेगा कि उनकी दिलचस्पी नहीं है या विरोधी पार्टीके हैं। तो विरोधी पार्टीके न समझे जाँय, इसलिये भी विभागीय या सरकारी उत्सवोंमें सम्मिलित होना पड़ता है। तो संध्यावन्दनमें जो गायत्री-जप है, वह तो प्रत्यवायसे बचनेके लिए है। अब दूसरे जो जप हैं, वे हैं तो सब-के-सब ऐच्छिक इसीसे उनमें संकल्प होना आवश्यक है। जो ऐच्छिक जप होगा, उसमें इच्छाके विषयकी स्पष्टता चाहिए। तो अन्तःकरणशुद्ध्यर्थम्, भगवत्-प्रसाद-सिद्ध्यर्थम् यह कोई-न-कोई संकल्प अपने मनमें रहना चाहिए। यह जपकी एक बात हुई। भयवाली बात जो है, वह धर्म-कर्ममें काम नहीं देती।

निवारक शक्ति संकल्पमें-से उदय होती है। माने जो चीज हमें प्राप्त करना है-तो प्रतिबन्ध-निवारक शक्ति जो है वह संकल्पकी स्पष्टतामें-से निकलती है। नहीं तो फल गड़बड़ा जाता है कि कहाँ ले जाँय और क्या जाँय? और, पता नहीं आगे क्या-क्या मनमें आवे, इसलिए एक संकल्प होना आवश्यक है। यह धर्मकी विधि है कि बिना संकल्पके हमारे कर्मको दिशा नहीं मिलती है कि वह कहाँ जायेगा?

माने कौन-सा फल उत्पन्न करे कर्म यह दिशा ही नहीं मिलती है, कर्मको।

संकल्पेन विना यत् किंचित् क्रियते नरैः
तत् सर्वं निष्फलम् प्रोक्तम्।।

संकल्पका अर्थ यह नहीं है कि हाथमें अक्षत, कुश लेकर संकल्प किया जाय। अपने मनमें यह हो कि इससे हमारा अन्तःकरण शुद्ध हो। संकल्प तो मनमें होता है। क्रिया तो बाहर है, वह संकल्प वैसे भूल जायेगा। प्रारम्भमें जब यह निश्चित कर देंगे कि उसके लिए कुछ वस्तु या क्रियाका उपयोग करेंगे तो याद आजायेगा। वह तो संकल्पको बुलानेके लिए वाहन है। ये हम जो जन्मसे ब्राह्मण है न, वे इस बातको जितना समझते हैं, उतना दूसरे नहीं। यह हमारे घरकी बात है, इसलिए इसमें किसीको नाराज नहीं होना चाहिए। जो नित्य नैमित्तिक कर्म हैं, उन्हें प्रतिदिन दोहराना चाहिए। संध्यावन्दनमें प्रतिदिन संकल्प न करें, तो चलेगा। उसमें भी एक विनियोग है और उसका महा-संकल्प यज्ञोपवीतके दिन ही हो गया है कि हम प्रतिदिन संध्यावन्दन करेंगे। तो संध्यावन्दनमें प्रतिदिन यदि संकल्प न किया जाय तो चल सकता है।

परन्तु, हम अन्तःकरणशुद्धिके लिए या भगवत् प्रीतिके लिए यह काम कर रहे हैं-यह तो प्रतिदिन ही मनमें आना चाहिए। इससे हमको निष्कामता प्राप्त होगी। अच्छा, और सप्रयोजन होना चाहिए। यह निष्कामता-निष्कामता जो है, यह केवल अखबारी बात है। किसीके जीवनमें निष्कामताका होना बहुत मुश्किल है और है भी तो तत्त्वज्ञान होनेके बाद है।

अब देखो, एक स्त्री है। उसको साड़ीकी जरूरत है। वह कहती है कि मैं तो अपने पतिकी प्रेमसे सेवा करती हूँ, उससे साड़ी भला क्यों माँगूँ? साड़ीकी कामना क्यों करूँ? तो जाय पड़ोसीसे माँगे? तो पड़ोसीसे माँगेगी तो पातिव्रत धर्मके अनुकूल नहीं होगा। उसको तो साड़ी पतिसे ही माँगकर लेनी चाहिए।

एक बच्चा है, उसको भूख लगी है। वह अपनी माँसे तो खाना माँगता नहीं, पड़ोसीके घर जाता है, दूसरेकी माँसे माँगता है। तो इसलिए सकामताके सम्बन्धमें भी यह है कि हम श्रीकृष्णसे नहीं माँगेंगे, बलरामजीसे माँगेंगे। हम रामजीसे नहीं माँगेंगे, हनुमान्‌जीसे माँगेंगे। तो इसमें कुछ बहुत स्वारस्य नहीं है। एक संकल्पकी बात हो गयी।

अब आगे देखो! क्रिया बिलकुल ठीक होनी चाहिए। रं रं रं रं-रं रं रं रं-ऐसे जपका कोई अर्थ नहीं।

एक बार मनहर कीर्तन कर रहा था, 'हाय रे कुछ ना, हाय रे कुछ ना, कुछ ना, कुछ ना हाय रे हाय रे'-हरे कृष्ण हरे कृष्णको 'हाय रे कुछ ना' बोलता था। यह कोई कीर्तनका ढंग नहीं है। बिलकुल स्पष्ट-और यदि भीतरसे भी एक विशेष स्थानसे स्पष्ट उच्चारण हो तो उत्तम।

ये जो शब्द होते हैं, इनके स्थान होते हैं। जैसे बोल रहे हैं, तो कण्ठसे बोलते हैं 'क' क-का उच्चारण देखो! र, र, र ऊपरसे बोलते हैं। 'र'की उत्पत्ति मूर्धासे होती है और 'क'की कण्ठसे। तो उच्चारणकी स्पष्टताका अर्थ यह है कि जिस अक्षरका उच्चारण जिस स्थानसे होता है वहाँसे उसका उच्चारण होना चाहिए। जैसे हरि, हर, ह्रीं देखो, इसमें कण्ठ और मूर्धा दोनोंका सम्बन्ध है। जो लोग अपने आप ही किताबमें पढ़कर करना शुरू कर देते हैं या दिलचस्पी न होनेसे, रुचि न होनेसे बात सुनी और उसमें लग गये, उसकी बारीकीको जानना नहीं चाहते, उनकी बात दूसरी है। उनके भावसे अन्तःकरण शुद्ध होगा। उनका भाव उनका अन्तःकरण शुद्ध करेगा। लेकिन मंत्रकी जो शक्ति है वह कुण्ठित रहेगी तबतक, जबतक ठीक उच्चारण नहीं होगा। पाँच-पाँच अक्षरका उच्चारण एक साथ करनेकी विधि है किसी-किसी मंत्रकी। माने जैसे-ह्रीं-ह र इ म, चार हो गया। ऐसे किसी-किसी मंत्रके उच्चारणमें पाँच-पाँच अक्षर तक होते हैं। और, उनका उच्चारण स्वयं कोई कर ही नहीं सकता, जबतक सिखाया न जाय।

अब जपमें, जप-क्रिया बिलकुल स्पष्ट होनी चाहिए कि गंभीरताके साथ अंतरंगमें प्रवेश करे। क्रिया होती है बाहरसे, उसका

फल बाहर नहीं होता। उसका फल होता है भीतर। माने, हृदयमें भावकी उत्पत्ति होनी चाहिए। जैसे राम-रामका उच्चारण हुआ मुखसे तो उसका फल क्या होवे ? या तो रामाकार वृत्ति हो हृदयमें और या तो अन्तःकरणमें जो अ-राम है, वह निकल जाय। दो फल होना चाहिए। रामाकार वृत्ति होना दूसरी चीज है और अ-रामका निकलना दूसरी चीज है। रामाकार वृत्तिसे रामका मानस या बाह्य दर्शन होता है और अ-रामके निकल जानेसे अन्तःकरण शुद्ध होने पर, जगह होनेपर अन्तःकरणमें जो अन्तःकरणके भीतर अधिष्ठान प्रकाशक रूपसे बैठा हुआ है, उसका प्रतिबिम्ब पड़ेगा। माने अन्तःकरण शुद्ध होगा, खाली होगा, तो अंतरंग-तत्त्वका उसमें प्रतिबिम्ब पड़ेगा। और, यदि अन्तःकरण रामाकार होगा, तो रामका दर्शन होगा। चाहे भीतर हो, चाहे बाहर हो। अब यह रामका दर्शन दूसरी चीज है। यह संस्कारी है, यह हिन्दूको होगा, मुसलमानको नहीं होगा। कृष्णका होगा, देवीका होगा, शिवका होगा, सब होगा और, जिसके मनमें-से रामका जप अ-रामको निकाल देगा, उसके अन्तःकरणमें जो अन्तःस्थित स्वतःसिद्ध तत्त्व है, उसकी छाया पड़ने लग जायेगी। प्रतिबिम्बन होने लगेगा, माने तत्त्वका साक्षात्कार होगा। तो यह शम-दमादि जो हैं, ये अन्तःकरण शुद्धिके नाम हैं। शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान ये अन्तः-करणशुद्धिके नाम हैं।

अच्छा, पहले फल पर ही हमने आपका ध्यान खींच दिया कि जो जप करते हैं, जपमें संकल्प होना चाहिए कि इससे क्या होगा? जपकी क्रिया बिलकुल ठीक-ठीक होनी चाहिए और, जपका जो फल है, उसके बारेमें भी अपना बिलकुल ठीक ख्याल होना चाहिए। अच्छा, यह ख्याल होनेसे भी बड़ा भारी लाभ होता है कि जिस चीजको हम चाहते हैं न, कि इसका यह फल होगा-अभी है तो नहीं, उदय होगा, तो जपके समय बारम्बार मन जाकर उसका स्पर्श करेगा, टच करेगा। यदि फल कल्पनामें ठीक-ठीक होगा तो हमारा मन पुनः-पुनः, पुनः-पुनः उसका स्पर्श करेगा। चाहे वह शुद्धिरूप फल हो और चाहे वह भाव-रूप फल

हो। रामकृष्णादि भावरूप फल हैं और निर्विषयता जो है, वह शुद्धिरूप फल है।

अब मंत्रके स्वरूप पर भी विचार करते हैं। शक्तिके उद्‌बोधक मंत्र, प्रियके उद्‌बोधक मंत्र और आवरण भंजक-मंत्र, ये मंत्रकी तीन प्रक्रियाएं होती हैं। कोई चीज मँगा देनेवाली, हटा देनेवाली, दूसरेके मन पर प्रभाव डाल देनेवाली, हिप्नोटाइज कर देनेवाली-ये सब क्षुद्र-सिद्धियाँ हैं, जो व्यक्तिगत होती हैं। एक होती है व्यक्तिसिद्धि और एक होती है कार्यसिद्धि। इन दोनोंके लिए शक्ति-उद्‌बोधक मंत्र काम देते हैं- अब अपने इष्टदेवके आकार और रूपमें जो अन्तर होता है, उसको भी समझना चाहिए।

परसों एक महात्मा बात कर रहे थे, तो हमने देखा कि आकार और रूपमें जो अन्तर है, वह उन्हें ग्रहण नहीं हो रहा है। आकार जो होता है, वह उपादानके अनुरूप ही रहता है। माने जो सच्चिदानन्दघन उपादान है-उसमें मानसिक रेखा खींच करके, रेखासे आकार बनता है-ऐसा समझो। तो, सोना-सोना रहेगा, माटी-माटी रहेगी और आकार जो है, वह रेखाओंका खेल है और रूप जो है वह रंगोंका खेल है। अच्छा, तो रंगोंका जो खेल है, वह वस्तुके स्वरूपको प्रकट नहीं होने देता और आकारमें तो केवल रेखाएँ बनी रहें भला! घड़ा एक रेखा है। रेखाके द्वारा घड़ेकी आकृति बनने पर भी माटीमें कोई फर्क नहीं पड़ता। घड़ेका वजन अलग वजन नहीं है, वह तो माटी ही माटी है। लेकिन रंग तो माटीको पहचाननेमें बड़ा भारी बाधक हो जाता है।

एक घड़े पर ही ताँबेका, सोनेका, चाँदीका, कोई भी रंग चढ़ाकर रूप उभार दिया-वह तो पच्चीकारी है। तो, यह जो ब्रह्माकारवृत्तिका प्रसंग है, इसमें ब्रह्माकार जो है, वह विश्वके कल्पित आकारको मिटानेके लिए ब्रह्ममें प्रमाण-वृत्तिके द्वारा उत्कीर्ण-खींचा हुआ एक आकार है, रेखा है, रेखाचित्र है। प्रमाण-वृत्ति जो है, वह दूसरे आकारोंको भंग करनेके लिए-जैसे हम घड़ेके आकारको बट्टे-खातेमें डाल दें, तब भी हमारे सामने मिट्टीका चूरा या मिट्टीका ढेला या

मिट्टीका लोंदा आयेगा। वह मिट्टीका डला भी तो कल्पित है न! हम यह कह रहे हैं कि घड़ेको मिट्टी पहचानना चाहते हैं! तो हम घड़ेके आकारको बट्टे खातेमें डाल दें, मिट्टी रहने दें, वजनमें तो कोई कमी हुई नहीं। तो उसको हम मिट्टीके लोंदेके रूपमें देखेंगे या चूराके रूपमें देखेंगे। लेकिन वह चूरा और लोंदा जो है, वह मिट्टीको पहचाननेमें मददगार होने पर भी, वह भी मिट्टीमें उतना ही कल्पित है, जितना घड़ा। वह मिट्टीका लोंदा तो कोई मिट्टीका आकार नहीं है और मिट्टीका चूरा भी कोई मिट्टीका आकार नहीं है। वह केवल मिट्टीके स्वरूपको समझनेमें इसलिए उपकारी हो गया कि हम केवल घड़ेको घड़ा ही समझ रहे थे, मिट्टी नहीं समझ रहे थे। जब वह लोंदा हो गया, चूरा हो गया या बिलकुल धूलमें मिला दिया गया, धरतीसे एक हो गया, तब वह जो घड़ेके आकारका जो आग्रह था कि घड़ा नामकी कोई चीज है, वह नहीं रहा। तो इसी तरहसे, ये जो आकार है, इनको कोई तोड़नेकी जरूरत नहीं है। तोड़ने पर भी एक आकार ही होगा। वह तो ब्रह्मको पहचाननेकी एक विद्या है। लेकिन यह बात इस प्रसंगमें नहीं है। वह तो हमने अपने सहज स्वभावको उगल दिया।

तो, यह जो ईश्वरका रूप प्रकट होता है, जिसको हम शिवके समान गोरा या नारायणके समान साँवला या देवीके समान साँवला-गोरा दोनों, देवी सुनहरी भी होती है, साँवली भी होती है, गोरी भी होती है-लेकिन उपादानरूप जो सच्चिदानन्द है, वह इन रेखाचित्रोंसे या भरे हुए रंगोंसे या पच्चीकारीसे-पच्चीकारी सूअरकी शक्लमें है कि गायकी शक्लमें है और वह लाल रंगसे है कि सफेद रंगसे है, गाय और सूअरमें आकृतिका भेद है और सफेद और कालेमें रूपका भेद है-इन दोनों भेदोंके होने पर भी जो मूल मसाला है, उसमें कोई फर्क नहीं हुआ। तो यह जो रामका, कृष्णका, शिवका, काला-गोरा रूप है और लिंगमूर्ति या गोलाकार शालग्राम मूर्ति बीज उसीको मानते हैं। बीज शालग्राम है और अंकुर लिंग है। और ये नारायण, विष्णु आदि जो हैं, ये वृक्ष हैं। अपनेको पसन्द क्या है? वह फूल-रामकृष्ण आदि जो हैं, वे फूल हैं

उसमें, तो अब ये सारी-की-सारी बात जिस पंचभूतमें या जिस ब्रह्मसत्तामें हो रही है, उस आकारको उत्कीर्ण करनेवाले मंत्र होते हैं। तो एक मंत्र तो वे हैं जो हमारे प्रिय रूपको उत्कीर्ण करते हैं और एक मंत्र वे होते हैं, जो शक्तिका उद्‌बोधन करते हैं और एक मंत्र वे होते हैं, जो तत्त्व पर पड़े आवरणको भंग करते हैं। आनन्द-प्रधान मंत्र, चित्-प्रधान-मंत्र, और सत्-प्रधान-मंत्र। सत् माने शक्तिवाले। शक्तिवाले मंत्र सत्-प्रधान हैं और आकार वाले मंत्र आनन्द-प्रधान हैं और आवरण-भंग करने वाले मंत्र चित्-प्रधान हैं। जैसे 'ह्रीं', 'श्रीं' 'क्लीं' आदि जो मंत्र हैं-ये शक्तिके उद्‌बोधक हैं और अष्टाक्षर, द्वादशाक्षर आदि जो मंत्र है, वे अपने प्रिय-रूपको प्रकट करनेवाले मंत्र हैं और ओंकार आदि जो मंत्र हैं वे कार्य-कारणके भेदका भंजन करके आवरणको भंग करते हैं। अच्छा, ये 'अहं ब्रह्मास्मि' 'तत्त्वमसि' आदि जो हैं, ये जपमें उपयोगी नहीं हैं। 'सोऽहं' जपमें उपयोगी है। लेकिन 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि जो हैं, ये विचारोत्तेजक हैं। ये विचारोंको दिशा देते हैं और सोऽहं आदि जो हैं वह कार्य कारणके भेदभावको मिटाकर लयावस्थाके उत्पादक हैं। हम किसी मंत्रका विरोध नहीं करते, देखो, हम सभीका समर्थन कर रहे हैं। यह बात भी ध्यानमें रहे कि अपने-अपने स्थान पर सब मंत्र, चाहनेवालेकी दृष्टिसे होते हैं।

× × ×

प्रश्न-महानिर्वाण तंत्रमें जो मंत्र है, वह आवरण-भंजक है क्या?

पू. महाराजश्री-वह लयदाता भी है, माने वह अनेकताको काटकर एकताको लाता है-इसलिए विचारमें भी मददगार है और लयमें भी मददगार है। यदि अधिकारीका अन्तःकरण उद्‌बुद्ध होगा तो विचार होगा और यदि उद्‌बुद्ध नहीं होगा तो लय होगा। नाम-रूपका लय हो जायेगा। देखो, अन्तःकरणमें-से जो कार्य-वर्गका कूड़ा है उसको शक्तिवर्द्धक-मंत्र और प्रियतावर्द्धक-मंत्र दोनों मिटाते हैं। तो शक्तिवर्द्धक मंत्र जो हैं, वे तो ऐसे हैं कि अपनेमें जो हीनताका भाव है

कि हम ईश्वर या ब्रह्मसे एक कैसे हैं-उसको मिटा देते हैं। शक्तिवर्द्धक मंत्र जो हैं वह एक आश्वासन देते हैं, उत्साह देते हैं, आशा देते हैं कि ईश्वरने सृष्टि बनायी है और हम भी थोड़ा बना सकते हैं। हमारी शक्ति बिलकुल न्यून नहीं है। इसलिए हीनताका जो भाव है इसको शक्तिवर्द्धक-मंत्र बिलकुल मिटा देते हैं। अच्छा, जो राग-द्वेष फैला हुआ है सृष्टिमें, उसको-प्रियके आकारको उत्पन्न करनेवाले प्रियता-वर्द्धक मंत्र जो हैं-वे बिखरे हुए राग-द्वेषको मिटा देते हैं और आवरण-भंजक मंत्र जो हैं वे तो अज्ञान-निवृत्तिपर्यन्त प्रमा उत्पन्न करते हैं माने ऐसी प्रमा उत्पन्न कर सकते हैं जिससे अज्ञानकी निवृत्ति हो। अच्छा, आप चाहे प्रियको प्राप्त कीजिये, चाहे शक्तिको बढ़ाइये, लेकिन मूल-तत्त्व कारण है-इसका विस्मरण न होने पाये। वह संधिस्थलको प्रकट करता है। अब यह मंत्र-शास्त्रका विषय है। कहते हैं कि तुम 'नमो भगवते वासुदेवाय'का जप करते हो तो एक मंत्र हुआ, दो मंत्र हुआ, तीन मंत्र हुआ। परन्तु ये एक हुआ, ये दो हुआ, ये तीन हुआ-इसकी विभाजक रेखा कहाँ हैं? तो यदि बीचमें ओंकार रहेगा तो वह विभाजक रेखा बनेगा और विभाजक रेखामें दो मंत्रोंका जो संधि-स्थल है वह सामान्य चेतन रूप है। इसलिए उस सामान्य चेतनका उद्‌बोधक होनेसे 'ओऽम्' प्रकाशक है। वह द्वैतको प्रकाशित करेगा। इसलिए गोपाल मंत्रका भी जहाँ उल्लेख है, इतना प्रियताबोधक मंत्र है। उसमें भी 'ओंकारेण, यह मूल गोपालतापनी उपनिषद्में है, जिसमें ओंकार मुख्य है। माने लय-पर्यन्त ले जायेगा। कोई वैष्णव ऐसा नहीं होगा, जो शालग्रामकी पूजा नहीं करता हो। चाहे रामका भक्त हो, चाहे कृष्णका भक्त हो, चाहे नारायणका भक्त हो, चाहे वाराहका, चाहे नृसिंहका, मत्स्यका, कूर्मका भक्त हो, लेकिन शालग्रामकी पूजा जरूर करेगा-यही जो शालग्राम हैं न, ये सब वैष्णवोंके साथ जुड़ा हुआ है। 'ओऽम्' जो लोग नहीं बोल सकते, तो उनके लिए राम बोलना ठीक है। हम राम और ओऽम्में भेद नहीं करना चाहते।

अच्छा, जपमें प्रमाद नहीं होना चाहिए। माने हो रहा है, हो रहा है, होता ही तो रहा-यह नहीं चाहिए। खास करके जप करनेवालोंके लिए यह बात है कि कितनी माला हो गयी, उनको मालूम ही नहीं है। सुमेरु कब पार हो गया, उनको मालूम ही नहीं है। तो यह प्रमादपूर्वक जो जप होता है, मंत्रका, वह फलकी उत्पत्ति शीघ्र करनेमें समर्थ नहीं होता। यह नहीं कि फलकी उत्पत्ति नहीं होगी, पर जल्दी नहीं होगी। प्रमाद किया, अपनी जीभ पर तो भगवान्‌का नाम आया और आपका मन चला गया पड़ोसीके घरमें। या तान दुपट्टा सो गये। मेहमान आया बैठक-ड्राइंगरूममें और मालिक जाकर तान-दुपट्टा सो गया। सो भी बुलाकर कि आप जरा बैठिये, हम दूसरेके घर होकर आते हैं।

हम एकके घर गये थे। बड़े प्रेमसे मोटरमें ले गये। हम दो-तीन घण्टे, भागवतका प्रवचन करके सीधे गये थे उनके घर, न लघुशंका की थी, न पानी पिया था, उठे और सीधे उनके घर चले गये। अब उन्होंने हमको बिठा दिया तख्ते पर और खुद निकल गये सड़क पर और देखने लगे कि दूसरे सेठ जो उनके घरमें आनेवाले थे-उनकी मोटर आरही है कि नहीं? अब हम तख्ते पर बैठे ताकते रह गये। न हम लघुशंका करने गये, न पानी पिया, हम जाकर तख्ते पर बस बैठे हैं और वह सड़क पर खड़े होकर देख रहे हैं कि सेठानी नहीं आयी। तब उनको बुलाकर समझाया।

अब देखो, भगवान्‌का नाम तो आया अपनी जीभ पर, तो उसमें प्रमाद नहीं होना चाहिए। प्रमाद दूर करनेके लिए कुछ सहारा लेना पड़ता है। तो वह सहारा क्या है? मालासे जप करो और गिनतीसे करो। अनगिनत मालामें आपका प्रेम तो है-आप अपने प्यारेका नाम लेते जा रहे हैं, जपे जा रहे हैं राम-राम-राम-राम। पर इतनी संख्या हो जानेका जो उल्लास है, वह आपके चित्तमें उत्पन्न नहीं हुआ। जैसे धनीको पैसा आवे और एक कमरेमें फेंकता जाय। अच्छा, उसको मालूम न पड़े कि कितने हो गये? तो यह तो संतोष रहेगा कि हमारे घरमें बहुत है, परन्तु कितना होनेका जो संतोष है, सुख है, वह उसको नहीं मिलेगा। यह

भगवान्‌का नाम भी धन है और धनको अगर पाकर किसीको सुख होये, आहा! आहा!

माला प्रायः तीन प्रकारकी होती है-मणिमाला, वर्णमाला, करमाला।

तो देखो, तुलसीकी माला पर शिवमंत्रका जप नहीं किया जाता। इसमें भावका भेद है। शिवसे तुलसी प्रसन्न नहीं हैं। तुलसीका जो पूर्वरूप है, वह शिवजीसे प्रसन्न नहीं है। पर नारायणने उनसे प्रेम करके उनको प्रसन्न कर लिया। तुलसीके पूर्वजन्मकी कथामें यह बात कही है। अच्छा, रुद्राक्षकी माला पर विष्णुका, शिवका देवीका-सबका जप हो सकता है, शिवजी तो बड़े भक्त हैं। रुद्राक्षकी माला पर नारायणका जप हो सकता है, पर तुलसीकी माला पर शिवका जप नहीं हो सकता। चन्दनकी माला पर भी सब जप चल सकता है। कमलकी माला-पद्म-माला होती है, उस पर भी सब चल सकता है और जप-गणना होनी चाहिए।

अच्छा, बहुत लोग सूतकी, सोनेकी, हीरेकी, काँचकी माला भी बना लेते हैं, तो वह भी चल सकती है। ऊनकी भी माला चल सकती है। बिलौरी, पत्थरकी भी माला चल सकती है। ऊन जो है, वह सूतकी अपेक्षा अधिक पवित्र माना जाता है। सूतमें भी वह यदि रेशमी हो तो साधारण सूतसे अधिक पवित्र माना जायेगा। परन्तु मुख्य माला तो वर्णमाला है।

अब देखो! यह माला तो प्रतिनिधि है, यह मुख्य नहीं है। माला गौण है। दो नम्बरका प्रतिनिधि है। एक नम्बरका प्रतिनिधि है वर्ण। वर्ण माने अ, आ, इ, ई, उ, ऊ-ये पचास होते हैं, और पचासका दुगुना कर देने पर सौ होते हैं-और आठ इनके मूल रूप होते हैं-अ, क, च, ट, त, प, य, श। सोलह-स्वर और पच्चीस-स्पर्श-प से लेकर म तक और य र ल व अन्तःस्थ होते हैं, श ष स ह ऊष्म होते हैं ये इनका विभाग होता है और कितने प्रयत्नसे किसका उच्चारण होता है। 'ब' बोलोगे तो ओठ लगेंगे और 'व' बोलोगे तो ओठ बिलकुल नहीं लगेंगे। तो 'व' अन्तःस्थ है और 'ब' बहिष्ठ। जपमें अक्षरोंका जो ज्ञान होता है वह भी ठीक है।

अराम, आ-राम, इ-राम, ई-राम-बिलकुल प्रमाद नहीं होगा, अगर इस मालासे मंत्रका जप करोगे। भीतर-गिनती हो गयी न राम नामकी। गिनती होनेमें जो सावधानी रही, वह जो मनसे कुछ सोच रहे, वह सोच रहे हैं। गधा भी सोच रहे हैं, सूअर भी सोच रहे और मंत्र भी सोच रहे हैं। वर्ण सोचना अच्छा नहीं है, ठीक है। परन्तु वर्णसे गणना भी हो जायेगी, एक-सौ-आठकी पूरी। इनसे अन्तरमें ही मालाका जप होगा और गिनती भी हो जायेगी। न हाथ हिलानेकी जरूरत है, न हाथमें माला सँभालनेकी जरूरत है। तो मुख्य माला तो वर्णमाला ही है, जपके शास्त्रमें।
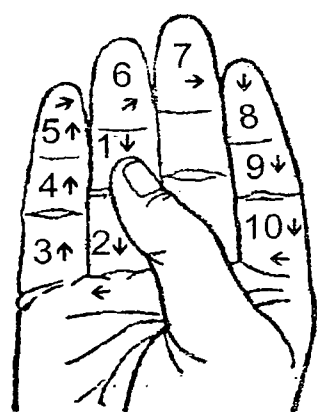
अच्छा, करमाला दूसरी है, जैसे हाथ पर-इसमें भी बड़ी सावधानी होनी चाहिए। दस-दसका क्रम होता है। यह अनामिकाके मध्य-पर्वसे प्रारम्भ होकर, फिर कनिष्ठके तीन पर्व, गिनती इस तरह होती है फिर अनामिकाका अग्र पर्व, मध्यमाका एक पर्व और तर्जनीका तीन पर्व, मध्यमाके दो पर्व छूट गये। अब इसमें फिर तर्जनीसे लौटकर मध्यमा पर होते हुए फिर अनामिकामें जहाँ प्रारम्भ किये थे, वहाँ आजाते हैं। मध्यमाके दो ही पर्व हैं वहींके वहीं छूटेंगे और पूर्णता वहीं होगी, जहाँसे प्रारम्भ किया है।

इसमें इसके और भी कई भेद होते हैं। इसके बाद माला है।

माने वर्णमाला अन्तरंग है और करमाला मध्यवर्ती है, चेष्टारूप है और मणिमाला बहिरंग हैं-यह तीनका क्रम बन गया। मालामें प्राण-प्रतिष्ठा होती है। वह पीपलके पत्ते पर रखकर, अमुक-अमुक मंत्रका उच्चारण-'माले-माले महामाले सर्वतत्त्व-स्वरूपिणि। चतुवर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्ये सिद्धिदा भव।।' प्राण-प्रतिष्ठा होती है। यह सब असलमें गुरु-गम्य है। जो गुरुमुख होकरके मंत्रका अनुष्ठान करते हैं, उनके लिए यह सुगम होती है। कैसी स्थितिमें कौन-सा मन्त्र साधकके

हृदयका स्पर्श करेगा, किस शक्तिके साथ उसकी एकता हो सकेगी- सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् श्रीगुरुदेवकी दृष्टिसे ये बातें छिपी नहीं रहतीं। इसीसे दीक्षाके सम्बन्धमें पूर्णतः उन्हीं पर निर्भर रहना चाहिए। वे जिस दिन, जिस अवस्थामें शिष्य पर कृपा कर देते हैं, चाहे जो मन्त्र दे देते हैं, विधिपूर्वक या अविधिपूर्वक-सब ज्यों-का-त्यों शास्त्रसम्मत है। उसमें किसी प्रकारके सन्देह या विचारके लिए स्थान नहीं है। वे अनधिकारीको अधिकारी बना सकते हैं। 'तत्त्वसार'में आया है-

यः समः सर्वभूतेषु विरागो वीतमत्सरः।
कर्मणा मनसा वाचा भीते चाभयदः सदा।।
समबुद्धिपदं प्राप्तस्तत्रापि भगवन्मयः।
पञ्चकालपरश्चैव पाञ्चरात्रार्थवित्तथा।।
विष्णुतत्त्वं परिज्ञाय एकं चानेकभेदगम्।
दीक्षयेन्मेदिनीं सर्वां किं पुनश्चोपसन्नतान्।।

'जो समस्त प्राणियोंमें सम हैं, राग-द्वेषहीन हैं, कर्म, मन और वाणीसे आर्तत्राण-परायण हैं, जिन्हें समत्वकी प्राप्ति हो गयी है और जो भगवन्मय हो गये हैं, जो नित्यकर्मका पालन करते हैं और वैष्णवशास्त्रका रहस्य जानते हैं-वे एक ही विष्णुतत्त्वको अनेक रूपोंमें जानकर सारी पृथिवीको दीक्षित कर सकते हैं; फिर शरणमें आये हुए अधिकारियोंकी तो बात ही क्या है।'

हम सबको मंत्रके बारेमें उत्साहित करते हैं, माने यह भी एक जानकारीका विषय है। अच्छा, यह जो श्वास वाली बात कर रहे हो, भक्तिमें इसका उपयोग नहीं है। और, यह जो कहा जाता है कि मालाके सुमेरुको लाँघना नहीं चाहिए। तो सुमेरु सावधानीका मूर्त रूप है। नहीं तो कितनी माला हो गयी, इसका पता नहीं चलेगा। पलटनेके समय इतना तो मालूम पड़ेगा कि एक माला हो गयी। नहीं तो मालाकी कोई गिनती ही नहीं होती है।

रुद्राक्षकी माला न मिलती हो तो तुलसीपर करना चाहिए। तुलसीपर करनेसे कोई पाप नहीं लगता और भाव-सम्बन्धी मंत्र पृथक्

होते हैं और विधि-सम्बन्धी मंत्र पृथक् होते हैं। जैसे राधेश्याम-राधेश्याम है-अब यह चाहे आप कंकड़-पत्थर पर करो, तब भी ठीक है, यह भावमंत्र है। खाली नाममें देखो जैसे राम है, कृष्ण है। 'कृष्ण' दो अक्षरका मंत्र भी है और नाम भी है और राम नाम दो अक्षरका मंत्र भी है और राम नाम भी है। तो कौन नाम भावसे लेना है, कौन मंत्र भावसे लेना है। मंत्रको तो संस्कार-दीक्षा सबकी आवश्यकता होती है, परन्तु नामको संस्कार-दीक्षा आदिकी आवश्यकता नहीं होती है। मंत्रमें तो नमः या स्वाहा और चतुर्थी भी जुड़नी चाहिए। 'रामाय नमः' 'रामाय स्वाहा', 'कृष्णाय नमः' 'कृष्णाय स्वाहा' और इसके पहले बीज अक्षर भी होने चाहिए। तो 'रा'का बीज अक्षर होता है और 'क'का भी बीज अक्षर होता है। जैसे शालग्रामकी पूजा पहले, विष्णुकी बादमें; वैसे बीज अक्षरका उच्चारण पहले और मूर्तिनामका उच्चारण बादमें। वह इसीमें-से तो निकला है। 'रं' जो है, वह अग्निबीज है और राम मंत्रमें राम बोला जाता है। षडक्षरमें जो राममंत्र है, वह रां है, राके ऊपर बिन्दी। जैसे शं शनैश्चराय नमः, ॐ शुं शुक्राय नमः, ॐ सं सूर्याय नमः, ॐ गं गणपतये नमः-ऐसे बोलते हैं।

अच्छा, श्वासके साथ, प्राणके साथ जप करनेके जो मंत्र हैं वे भाववर्द्धक नहीं होते। वे लय-समाधि लगाने वाले मंत्र होते हैं। उनको अभ्यास मंत्र कहते हैं। अच्छा! और उसमें बहुत मजेदार है, मूलाधारसे भी आगे इसमें दो-तीन पद्धति है-एक तो बोलते हैं परावाणीमें परमात्माकी प्राप्ति होती है। एक कहते हैं हृदयमें अनाहत-चक्र है, वहाँ होती है और एक कहते हैं सिरकी तरफ होती है। तो सिर वालोंने तो छः-चक्रको बारह-चक्र बना दिया। वे लिंगके अग्रभागसे चक्रोंका प्रारम्भ करके फिर मूलाधारमें जाकर और वहाँसे उठते-उठते समना और फिर उन्मनादशामें जाकर ऊपर जाते हैं। एक गति यह है। तो श्वासको भी ऐसे करते हैं, उसमें श्वासका भी अभ्यास होता है और दूसरा वैखरी-वाणीसे लेकर मध्यमा-पश्यन्ती और परावाणी मूला-धारमें जाकर लीन हो जाते हैं और परमात्माकी प्राप्ति होती है।

एक अनाहत मेघ-ध्वनि जो होती है, तबला बजता है, बाँसुरी बजती है, मेघ गरजता है, तो उसको राधास्वामी वाले आज्ञाचक्रसे ऊपर मानते हैं और कीनाराम भगवान् वाले मणिपूरकमें मानते हैं। अब इनमें श्वासके साथ एक अभ्यास यह होता है कि यह हवा जो हमारे भीतर प्रवेश करती है वह एक खास जगह पर ले जाती है, नीचे नहीं आती है, क्योंकि नीचेकी जो अपानवायु यदि ऊपर आवे, तो आदमी मर जाय। और, यह प्राणवायु ऊपर निकलती है यदि यह नीचे जाय, तब भी आदमी मर जायेगा। एक विभाजक रेखा है, जहाँसे अपान नीचे जाता है और प्राण ऊपर जाता है।

प्राणवायुके अभ्यासमें उस विभाजक-रेखासे प्राणको उठाकर धीरे-धीरे-धीरे ऊपरको ले जाते हैं और फिर नासिकाके द्वारा बारह-अंगुल बाहर तक जाते हैं और वहाँ स्व-प्राणको रोक लेते हैं। एक क्षण जो वहाँ प्राणको रोकेंगे, वह चित्तकी एकाग्रता हुई। फिर वहाँसे प्राणके साथ जो लौटे, तो उसका जो मार्ग है, ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त होकर फिर नीचेको लौटकर विभाजक-रेखाके पास आते हैं और वहाँ आकर एक-क्षणके लिए स्थिर हो जाते हैं। तो यह जो ऊपर चढ़ना, बाहर निकलना और फिर नीचे आना है, इसमें मंत्रको भी जोड़ देते हैं। अब इसमें 'सोऽहं' आदिका जप भी है। चक्रमें संख्याका अलगाव है। कोई बारहका चक्र मानते हैं-उनकी भिन्न-भिन्न गिनती है। छः चक्र मानने वालोंमें भी अनाहत-चक्र दूसरा है और हृदय-चक्र दूसरा है। हृदय-चक्र पर तो इष्टदेवका ध्यान होता है और अनाहत-चक्र कुण्डलिनी खाकर ऊपर उठ जाती है। ये योगियोंका विभाग है। इसमें एक बात तो यह निकलती है कि बाबा, बहुत जानकारी होनेसे भी इसकी पोल-पट्टी खुल जाती है तो वैराग्य हो जाता है। वैराग्यके लिए भी जानकारी आवश्यक है। बिना जाने वैराग्य कैसे करोगे? अब हम फिर आपको जपकी बात और बतायेंगे!

प्रवचन : 5

जैसे जितनी देर हम जप करते हैं, उतनी देर जीभ अपनी भगवान्‌को समर्पण कर देते हैं। जैसे एक वर्षके लिए ब्याह होता है, वैसे आध-घण्टेके लिए जीभ भगवान्‌के साथ होती है, इसमें हँसनेकी तो कोई बात नहीं है, यह भी समर्पण ही तो हुआ।

धर्मकी दृष्टिसे मंत्र ही देवताका बाप है। इसलिए यदि मंत्रका जप हो रहा है तो चाहे देवताका ध्यान हो कि न हो, वह मंत्र देवताको प्रकट कर देगा। यह गड़बड़ाने वाले जो लोग हैं, वे कहते हैं कि तुम तो जीभसे जप करते हो, तुमको भगवान्‌का ध्यान नहीं आता है तो इसमें क्या रखा है? वह तो योगियोंकी बात है। जप तो जीभसे ही होता है भाई, मनसे नहीं होता है। शब्दका जो उच्चारण है, वह मनका धर्म नहीं है, वह तो वाणीका धर्म है। इसलिए जो लोग कहते हैं कि हम मनसे शब्दका उच्चारण करेंगे, वे तो कल्पना करते हैं केवल। जप तो केवल जीभसे होना चाहिए।

आप देखो, हम आपको बिलकुल सनातन-धर्मकी बात सुनाते हैं कि कर्मकाण्डमें यह नहीं माना जाता है कि इन्द्र-देवता स्वर्गमें रहता है। जब हम 'इन्द्राय-स्वाहा' करके हविष्य यज्ञकुण्डमें छोड़ते हैं, तो यह जो सम्प्रदान-विभक्तिसे युक्त 'इन्द्र' शब्द है, वही इन्द्र-देवता है। यदि 'इन्द्राय' शब्दका ठीक उच्चारण हमारी जिह्वासे हुआ, तो उसी समय इन्द्र-देवता प्रकट होकर उस हविष्यको ग्रहण कर लेगा। और यदि हजार कुण्डमें हवन किया जाय तो हजार इन्द्र प्रकट होंगे। हजारों जगह

हजारों इन्द्र प्रकट होंगे; क्योंकि जितने शब्द हैं, उतने इन्द्र हैं-यह कर्मकाण्डका सिद्धान्त है। इसलिए जो लोग जप करते समय ऐसा समझते हैं कि बिना मनके जप अधूरा होता है, वे लोग मंत्रका अपमान करते हैं और मंत्रका अपमान करनेके कारण उनका मंत्र सफल नहीं होता है। आप 'राम', 'राम' करते हैं और कहते हैं कि अभी इसमें मन नहीं लगा, इसमें देवता नहीं आया। तो राम-रामकी क्या कीमत रही? राम-राम भी दो कौड़ीका हो गया-यदि आप यह कहते हैं कि बिना ध्यान किये, बिना मन लगे राम नामसे क्या होता है ? तो पहली बात यह है कि यह जीभसे होता है। यह धर्म है कि जीभसे भगवन्नामका उच्चारण, मंत्रका उच्चारण किया जाय।

अब दूसरी बात यह है कि भक्त लोग कहते हैं कि जिसका नाम हम लेते हैं, उसके बारेमें मनोराज्य होना चाहिए। धर्मका सिद्धान्त है, मंत्रका उच्चारण और उपासनाका सिद्धान्त है इष्टदेवके बारेमें मनोराज्य। यह नहीं कि नाच रहे हैं कि गा रहे हैं कि बजा रहे हैं। वे कभी खड़े हैं, कभी सोते हैं, कभी बैठते हैं, कभी माँगते हैं, कभी मुस्कुराते हैं, कभी प्रेमकी आँखसे माँग लेते हैं, कभी ना बोल देते हैं। तो इष्टदेवके बारेमें मनोराज्य होता रहे-इसमें भी एकाग्रता नहीं है। इसका नाम एकाग्रता कैसे होगा? अच्छा, योगी लोग कहते हैं कि मन एकाग्र होना चाहिए।

अब आप देखो, इस गड़बड़में कभी मत पड़ना कि पहले मन एकाग्र हो जाय, तब जप करना चाहिए। वह तो बिलकुल बेवकूफ आदमी है, जो ऐसा सोचता है और आपमें-से यदि कोई हो, तब भी मैं कहता हूँ। पहले मन एकाग्र हो जायेगा, तब तुम जप करना चाहोगे, तो कभी नहीं कर सकोगे, जिन्दगीमें होगा ही नहीं। पहले जप करना शुरू करो, अगर मन एकाग्र होना जरूरी होगा, तो समय पर अपने आप हो जायेगा। जप करना साधन है, मनका एकाग्र होना फल है। यदि तुम पहले ही यह सोचोगे कि पहले मन एकाग्र हो जाय, तब जप करनेकी न जरूरत रहेगी, न एकाग्रतामें जप होगा। एकाग्रतामें जप होगा ही नहीं,

छूट जायेगा वह तो। इसलिए पहले सैलानी जप करना चाहिए और फिर कायम-मुकाम जप होना चाहिए और इसके बाद मुस्तकिल होना चाहिए।

गायत्री आदिके जो जप हैं, वे ऐसे हैं कि अपने आप सुने, दूसरा कोई न सुने (एक) अपने आप भी जीभ न हिले, भीतर-भीतर होता रहे, (दो) जप हो रहा है, इसको देखते रहें, (तीन) और देखना और होना-ये दोनों अलग-अलग न रहें-यह (चार)। देखना और होना-दोनों अलग-अलग नहीं रहे तो यह है-परावाणी-और देखना और होना दोनों अलग-अलग रहे तो यह पश्यन्ती-वाणी। और करना रहे भीतर-भीतर तो मध्यमावाणी। और करना रहे बाहर तो-'वैखरी वाणी' है। जहाँ करना बाहर है वहाँ 'वैखरी वाणी' है, जहाँ करना भीतर है, वहाँ 'मध्यमावाणी' है, जहाँ जपका होना देखा जाता है, वहाँ 'पश्यन्ती वाणी' और जहाँ होना और देखना अलग-अलग नहीं, उसका नाम 'परावाणी' है।

अच्छा देखो! हम हाथसे मशीन चलाते रहें और दूसरा कुछ सोचें तो यह तो चलता है और पाँवसे चलते रहें और दूसरा सोचें, यह भी हो सकता है। लेकिन हम कोई चीज गौरसे सुनें और मन दूसरी जगह भेज दें-यह बात नहीं हो सकती। इसलिए यदि सुनेंगे तो श्रवणमें मन एकाग्र होगा। तो सुनना अच्छा है। लेकिन यह सोचना कि हमारा मंत्र मन लगने पर ही फल देगा, यह तो बिलकुल ही गलत है। मन लगे कि नहीं लगे मंत्र तो अपना फल देगा ही देगा। वस्तुतः इष्टदेवका अनुग्रहविशेष ही मंत्र है। वह साधारण शब्दमात्र नहीं, उसकी शक्ति दिव्य है।

× × ×

प्रश्न-'ओऽम्' 'सोऽहं' की उपासना योगियोंकी है अथवा वेदान्तियोंकी?

पू. महाराजश्री-ओऽम्‌की उपासनामें तो योगी और वेदान्ती दोनों हैं। परन्तु ॐका जो विचार है, वह वेदान्तियोंका अपना खास है।

अकार, उकार, मकार और अमात्र, जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति-तुरीय। और केवल जप करके जो लय-अवस्था प्राप्त करना है-वह तो प्रमाणहीन है अवस्था। उस समय प्रमाण प्रमेयका व्यवहार नहीं होनेसे तत्त्वज्ञान नहीं होता-इसलिए वह योगियोंकी है।

भक्ति और वेदान्तमें वृत्ति चाहिए। भक्तिमें वृत्ति हो तो भगवान्‌की लीला देखे और वेदान्तमें वृत्ति ब्रह्माकार होकर अज्ञानको मिटा दे। योगियोंको वृत्ति नहीं चाहिए, उनको तो लय चाहिए और वे भले असंग-साक्षी होकर उसको देखते रहते हैं। विचारका जब उदय होता है तो लय-वय फाड़कर फेंक देते हैं। अब देखो भाई, किसीका कोई मंत्र हो, उसका कोई जप करता है, दुहराता हो, तो एक-एक मंत्रके बारेमें पूछोगे तो उसके मनमें दुविधा ही तो पैदा होगी न! तो जो जहाँ कर रहा है, ठीक है। हम चाहते हैं कि कोई अपना गुरु न बदले, अपना मंत्र न बदले, अपना इष्ट न बदले। अगर उसको करनेमें कोई असुविधा होती है और हमसे मदद मिलती हो तो पूछ ले, हम उसकी मदद तो कर सकते हैं। परन्तु, उसको निष्ठापित करनेके लिए हम उससे बात करेंगे। उसकी निष्ठाको बदलनेके लिए नहीं। वह तो हमको भी बदलनेका उपाय हो जायेगा। अगर वह अपना कोई भी गुरु बदल सकता है तो हमको गुरु बनावेगा तो हमको भी बदल देगा।

× × ×

प्रश्न-मंत्रमें अंग-न्यास, कर-न्यासका क्या अभिप्राय है?

पू. महाराजश्री-अपनेमें जो हीनताका भाव है उसकी निवृत्तिके लिए न्यास करनेसे पवित्रताका भाव आजाता है। पहले कर-न्यास फिर बादमें अंग-न्यास। न्यास तो बहुत होते हैं। हमारे रोम-रोममें राधा-कृष्ण, युगल सरकार नृत्य कर रहे हैं। इसीका नाम तो न्यास है- '**न्यासमात्रेण देहिनाम्**'-हमारा शरीर क्या है? इसके रोम-रोममें अक्षर हैं, पद हैं, मंत्र हैं, अपने इष्टदेव हैं, नाच रहे हैं रोम-रोममें। हम इतने पवित्र हैं कि उनसे मिल सकते हैं।

आपको तो सुनाया ही था, रुक्मिणीने कहा कि तुम ही मेरी बराबरी कर सकते हो दुनियामें और मेरी बराबरीका कोई नहीं है। रुक्मिणीकी चिट्ठीमें यही बात है। माने हम बराबर होकर भगवान्से मिलेंगे। 'हैं'-हैं-पैं-पैं-मैं-मैं करनेवाले कहीं भगवान्की छातीसे लगने लायक हैं? नाम लेते हैं, मंत्र जपते हैं-यह शृंगार इतना जो है-ये द्वादश-तिलक लगाते हैं-इतना काहेको शृंगार करते हैं? यह सब हीन भावनाको हटानेके लिए है। हाँ! हम भी कुलीन हैं, तुम भी कुलीन हो। हम भी सुन्दर तुम भी सुन्दर, हम भी जवान तुम भी जवान, हम भी सद्गुणी तुम भी सद्गुणी। ऐसे गड़बड़-सड़बड़से काम नहीं चलता।

एक बार एक सज्जन कर्णवासमें 'श्री उड़ियाबाबाजी महाराज'के पास आये कि हमको आप मंत्रदीक्षा दीजिये। शिष्य बना लें। बाबाने कुछ ध्यान नहीं दिया उनकी बात पर। वह तीन-दिन, चार-दिन उपवास करके कुटियाके पीछे पड़े रहे। अभी ईश्वर-कृपासे उनका शरीर है, जिन्दा हैं वे। तो बाबाने उनसे कहा कि देख! तेरा गुरु मैं नहीं हूँ। तेरे गुरु अमुक व्यक्ति हैं, तुम उनके पास जाओ। तो वे गये और उनसे मंत्र-दीक्षा ले ली। अब ऐसा हुआ कि उनके मनमें पहले दृढ़-निश्चय था कि हम बाबाको गुरु बनावेंगे और गुरु बनाना पड़ा दूसरेको। वहाँ भी उनकी श्रद्धा हो गयी। तो बादमें उनको ऐसा लगे कि बाबा हमको स्वप्नमें आकर डंडा मारते हैं और वह इतना विरोधी हुआ बाबाका बादमें, तब हम लोगोंकी समझमें आया कि बाबाने इसको मंत्र क्यों नहीं दिया। क्योंकि; बाबा तो खुलेमें सबको कह देते थे कि पंचाक्षरका जप करो, अष्टाक्षरका जप करो और उस आदमीको तीन-चार दिन उपवास करनेके बाद भी मंत्र नहीं दिया। तो, उनको जरूर इस बातका आभास मिलता होगा कि यह आदमी बादमें अपनी श्रद्धाकी रक्षा नहीं कर सकेगा।

अब वह मालाकी बात जो है, उसमें ज्यादा कर्मकाण्डमें नहीं पड़ना चाहिए। यदि मालामें प्राण-प्रतिष्ठा करोगे, तो माला देवताकी

तरह रखनी पड़ेगी। यह नहीं कि चाहे जहाँ लटकाकर रख दो, लटकाकर चाहे जहाँ चल पड़े। वह माला हाथमें लेनेसे भाव बनेगा कि मालामें भी देवता है। उसकी पद्धति है-मालामें ऐसे नहीं कि चाहे जो मणियाँ चाहे जहाँ घूमती जायें। उसमें भी जो बड़ी मनिका होती है पहले वह, फिर उससे छोटी, फिर उससे छोटी। माने साँपका शरीर जैसा होता है-आगेको मोटा, पीछेको पूँछ पतला-मालाका रूप ऐसा होना चाहिए। माने उसको कुण्डलिनी शक्तिके समान बनाते हैं। उपासनामें इसकी जरूरत है, ज्ञानमें तो इसकी जरूरत नहीं है और प्रेममें भी नहीं है। प्रेममें अपने प्यारेका नाम लेनेके लिए मालाकी जरूरत नहीं है।

हम बच्चे थे न! हमको काशी बहुत अच्छी लगती थी। तो हमारे हाथमें कोई कलम आजाय, कागज आजाय तो हम उसपर **'शिवः काशी, शिवः काशी, काशी-काशी, शिवः शिवः'** ऐसे मैं पूरी कापी भर देता था, तो उसमें कोई मालाकी या जपकी जरूरत नहीं थी। वह तो काशीसे हमारा प्रेम था। जिससे हमारा प्रेम है, उसका नाम हमारी जीभ पर बारम्बार आता है। आज्ञा मानकरके नाम लेना-यह धर्म-विभाग है और प्रेमसे नाम लेना-यह भक्ति-विभाग है। और, नाम और अर्थका एक हो जाना-यह ज्ञान-विभाग है। ऐसा प्रेममें अपने मनको हर समय स्वादमें, रसमें डुबोकर रखना चाहिए कि जिससे बोलें उसको भी स्वाद आ जाय, जिसकी ओर देखें, उसको भी स्वाद आजाय, जिसको छू लें उसको भी स्वाद आजाय। यह स्वादका दान करो। रसका दान करो। एक गिलास पानी पिलाओ जो तुम्हारे पास आये और पानी पिलाकर इतने खुश हो जाओ कि उसको पानी पीनेकी खुशी नहीं, तुम्हारी खुशी देखकरके वह खुश हो जाय। बोलो, चलो, हँसो, खेलो। यह जीवनमें जितनी भी कड़वाहट है वह सब-की-सब शैतानकी है और जितना प्यार है वह सब परमेश्वरका है। जैसे गोस्वामीजीने वह असंतकी पहचान लिखी है-

झूठहि लेना, झूठहि देना, झूठहि भोजन झूठ चबेना।

ऐसे ही अपना कर दो–'सुख ही लेना, सुख ही देना–सुख ही भोजन, सुख चबेना'। अपनी दुकान, अपना व्यापार जो है वह सुखका होना चाहिए। न किसीके उधारका केन्द्र है न कोई उधारकी कंपनी है। हमने स्वर्ग–नरक देखा ही नहीं है तो उसे छुड़ावेंगे कहाँसे? हमने बिलकुल नहीं देखा है कि स्वर्ग कैसा होता है और नरक कैसा होता है, तो हम उससे अललटप्पू छुड़ानेका उपाय क्या बतावें? अरे आओ, भगवान्‌का नाम लें और मौजमें रहें, जब कभी स्वर्ग–नरक सामने आयेगा तो निपट लेंगे उससे। अभी तो प्रेममें रहो, प्रेममें। इसलिए बात ऐसी होनी चाहिए जो हमारे ठोस जीवनके साथ सम्बन्ध रखती हो।

अच्छा, जप वाणीको शुद्ध करता है और उसके द्वारा भावको उत्पन्न करता है। जपमें क्रियाकी अपेक्षा ज्यादा सामर्थ्य है। वह इसलिए कि शब्द अपना एक अर्थ लेकर भी आते हैं। प्रत्येक शब्दका सामान्य एक अर्थ होता है। तो, जब हम उसका श्रवण करते हैं या उच्चारण करते हैं तो उस अर्थकी भी स्फूर्ति होती है। जैसे गुलाब एक शब्द है और गुलाब एक चीज है, फूल है और हमारे मुँहमें शब्द है और हाथमें फूल है। पर जो शब्द मैं बोल रहा हूँ, उसका अर्थ यही है–यह ज्ञान है कि नहीं? तो यह ज्ञान हृदयमें है। जहाँ फूल वस्तु, फूल शब्द, फूल ज्ञान तीनों एक होकर रहते हैं, उसका नाम 'समाधि' है। फूल वस्तु, फूल शब्द, फूल ज्ञान–ये तीनों अलग–अलग नहीं हैं। तो जब हम ईश्वरका नाम लेते हैं तो वह नाम ईश्वरको लेकर आता है, क्योंकि उसके नामका अर्थ गुलाबके फूलके समान है। जैसे गुलाब शब्दका अर्थ गुलाबका फूल है वैसे राम शब्दका अर्थ दशरथनन्दन है, कृष्ण शब्दका अर्थ यशोदास्तनन्धय है।

तो नारायण, मंत्र जिस वस्तुका संकेत करता है, साधकको जहाँ ले जाना चाहता है, यदि साधकको भी उस लक्ष्यका पता हो तो यात्रामें–साधनामें और भी सुविधा हो जाती है। यही कारण है कि

शास्त्रोंमें मंत्र-जपके साथ उसके अर्थ-ज्ञानकी भी आवश्यकता बतलायी गयी है और योग-दर्शनमें तो मन्त्रार्थ भावनाको ही जप कहा गया है। अब क्रिया तो कहीं कर सकेंगे, कहीं नहीं कर सकेंगे। कहीं नमाज पढ़ सकेंगे कहीं नहीं पढ़ सकेंगे और वस्तु अर्पण कहीं कर सकेंगे कहीं नहीं कर सकेंगे। लेकिन शब्दके उच्चारणमें इतनी स्वाधीनता है कि भीतर-ही-भीतर कहीं भी शब्दका उच्चारण कर सकते हैं। इसलिए औरोंकी अपेक्षा इसमें स्वावलम्बन बहुत अधिक है। अब आवश्यक यह है कि साधकके चित्तमें अपने मंत्रके प्रति साधारण शब्द-भाव न रहे, ब्रह्म-भाव जाग्रत् हो जाय, मंत्र चैतन्यके रूपमें स्फुरित होने लगे और वह उसीमें तल्लीन एवं तन्मय हो जाय।

●

मन्त्रानुष्ठान

मन्त्र शब्दका अर्थ है गुप्त परामर्श। वह श्रीगुरुदेवकी ही कृपासे प्राप्त होता है। मन्त्र प्राप्त होनेपर भी यदि उसका अनुष्ठान न किया जाय, सविधि पुरश्चरण करके उसे सिद्ध न कर लिया जाय तो उससे उतना लाभ नहीं होता जितना होना चाहिए। श्रद्धा, भक्तिभाव और विधिके संयोगसे जब मन्त्रोंके अक्षर अन्तर्देशमें प्रवेश करके एक दिव्य आहिण्डन करने लगते हैं तो उस संघर्षसे जन्म-जन्मान्तरीय पाप-तापोंके संस्कार धुल जाते हैं। जीवकी प्रसुप्त चेतनता साक्षात्कारसे वह कृतकृत्य हो जाता है। जबतक दीर्घकालतक निरन्तर श्रद्धाभावसे मन्त्रका अनुष्ठान नहीं किया जायगा, तबतक प्रेम अथवा ज्ञानके उदयकी कोई सम्भावना ही नहीं है। इस अनुष्ठानमें कुछ नियमोंकी आवश्यकता होती है। यम और नियम ही आन्तरिक एवं बाह्य शान्तिके मूल हैं। इन्हींकी नींवपर अनुष्ठानका प्रासाद प्रतिष्ठित है। इसलिए अनुष्ठान करनेके पूर्व उन्हें जान लेना आवश्यक है। यहाँ संक्षेपमें उनका दिग्दर्शन कराया जाता है।

मन्त्रानुष्ठानके योग्य स्थान

मन्त्रानुष्ठान स्वयं करना चाहिए। यह सर्वोत्तम कल्प है। यदि श्रीगुरुदेव ही कृपा करके कर दें तब तो पूछना ही क्या। यदि ये दोनों सम्भव न हों तो परोपकारी, प्रेमी, शास्त्रवेत्ता, सदाचारी ब्राह्मणके द्वारा भी कराया जा सकता है। कहीं-कहीं अपनी धर्मपत्नीसे भी अनुष्ठान करानेकी आज्ञा है; परन्तु ऐसा उसी स्थितिमें करना चाहिए, जब उसे पुत्र हो। अनुष्ठानका स्थान निम्नलिखित स्थानोंमें-से कोई होना चाहिए। सिद्धपीठ, पुण्यक्षेत्र, नदीतट, गुहा, पर्वतशिखर, तीर्थ, संगम, पवित्र जङ्गल, एकान्त उद्यान, बिल्ववृक्ष, पर्वतकी तराई, तुलसीकानन, गोशाला (जिसमें बैल न हों), देवालय, पीपल या आँवलेके नीचे, पानीमें अथवा अपने घरमें मन्त्रका अनुष्ठान शीघ्र फलप्रद होता है।

सूर्य, अग्नि, गुरु, चन्द्रमा, दीपक, जल, ब्राह्मण और गौओंके सामने बैठकर जप करना उत्तम माना गया है। यह नियम सार्वत्रिक नहीं है। मुख्य बात यह है कि जहाँ बैठकर जप करनेसे चित्तकी ग्लानि मिटे और प्रसन्नता बढ़े, वही स्थान सर्वश्रेष्ठ है। घरसे दसगुना गोष्ठ, सौगुना जंगल, हजारगुना तालाब, लाखगुना नदीतट, करौड़गुना पर्वत, अरबोंगुना शिवालय और अनन्तगुना गुरुका सान्निधान है। जिस स्थानपर स्थिरतासे बैठनेमें किसी प्रकारकी आशङ्का–आतङ्क न हो, म्लेच्छ, दुष्ट, बाघ, साँप आदि किसी प्रकारका विघ्न न डाल सकते हों, जहाँके लोग अनुष्ठानके विरोधी न हों, जिस देशमें सदाचारी और भक्त निवास करते हों, गुरुजनोंकी सन्निद्धि और चित्तकी एकाग्रता सहजभावसे ही रहती हो, वही स्थान जप करनेके लिए उत्तम माना गया है। यदि किसी साधारण गाँव अथवा घरमें अनुष्ठान करना हो तो पहले कूर्म भगवान्का चिन्तन करना चाहिए। जैसे कूर्म भगवान्की पीठपर स्थित मन्दराचलके द्वारा समुद्रमन्थन किया गया था वैसे ही मैं कूर्माकार भूमिप्रदेशमें स्थित होकर उन्हींके आश्रयसे अमृतत्वकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न कर रहा हूँ, ऐसी भावना करनी चाहिए।

भोजनकी पवित्रता

मन्त्रके साधकको अपने भोजनके सम्बन्धमें पहलेसे ही विचार कर लेना चाहिए; क्योंकि भोजनके रससे ही शरीर, प्राण और मनका निर्माण होता है। जो अशुद्ध भोजन करते हैं उनके शरीरमें रोग, प्राणोंमें क्षोभ और चित्तमें ग्लानिकी वृद्धि होती है। म्लान चित्तमें देवता और मन्त्रके प्रसादका उदय नहीं होती है। म्लान चित्तमें देवता और मन्त्रके प्रसादका उदय नहीं होता है। इसके विपरीत जो शुद्ध अन्नका भोजन करते हैं, उनके चित्तके मल और विक्षेप शीघ्र ही निवृत्त हो जाते हैं। अन्नका सबसे बड़ो दोष है न्यायोपार्जित न होना। जो अन्यायसे, बेईमानी, चोरी, डकैती आदि करके अपने शरीरका पालन–पोषण करते हैं, उनको उस क्रियाके मूलमें ही अशुद्ध मनोवृत्ति रहनेके कारण

वह अन्न सर्वथा दूषित रहता है और उसके द्वारा शुद्ध चित्तका निर्माण असम्भव-प्राय है। जो लोग अन्याय तो नहीं करते, परन्तु संन्यासी अथवा ब्रह्मचारी न होनेपर भी विना परिश्रम किये ही दूसरोंका अन्न खाते हैं, उनमें तमोगुणकी वृद्धि होती है, वे अधिकांश आलस्य और प्रमादमें पड़े रहते हैं। उनके चित्तका मल दूर होना भी बड़ा कठिन है। अपनी कमाईके अन्नमें भी, जिससे दूसरोंका चित्त दुःखता है, उस अन्नसे चित्तकी शुद्धि नहीं होती। जिस गौका बछड़ा अलग छटपटा रहा है, पेटभर भोजन न मिलनेके कारण जिस गायकी आँखोंसे आँसू गिर रहे हों, उसका न्यायोपार्जित दूध भी चित्तको प्रसन्न कर सकेगा- इसमें सन्देह है। इसलिए भोजनमें सबसे पहले यह बात देखनी चाहिए कि वह वर्णाश्रमोचित परिश्रमसे प्राप्त किया हुआ है या नहीं? इसके उपयोगसे किसीका हक तो नहीं मारा गया है? इसको स्वीकार करनेसे किसीको कष्ट तो नहीं हुआ? कहीं इसके मूलमें विषादका बीज तो नहीं है? भोजनमें तीन प्रकारके दोष और माने गये हैं- जातिदोष, आश्रयदोष और निमित्तदोष। जातिदोष वह है जो स्वभावसे ही कई पदार्थोंमें रहता है। इसके उदाहरणमें प्याज, लहसुन और शलजमको रख सकते हैं। जातिदोष न होनेपर भी स्थानके कारण बहुत-सी वस्तुएँ अपवित्र हो जाती हैं। शुद्ध दूध भी यदि शराबखानेमें रख दिया जाय तो वह अपवित्र हो जाता है। यही आश्रयदोष है। शुद्ध स्थानमें रक्खी हुई शुद्ध वस्तु भी कुत्ते आदिके स्पर्शसे अशुद्ध हो जाती है। इस प्रकारके दोषका नाम निमित्तदोष है।

साधकका भोजन अवश्य ही इन तीनों दोषोंसे रहित होना चाहिए। गौके दही, दूध, घी, श्वेत तिल, मूँग, कन्द, केला, आम, नारियल, आँवला, जड़हन धान, जौ, जीरा, नारंगी आदि हविष्यान्न जो विभिन्न व्रतोंमें उपादेय माने गये हैं तथा जिस देशमें वहाँके निवासी वही भोजन कर सकते हैं। मधु, खारी नमक, तेल, पान, गाजर, उड़द, अरहर, मसूर, कोदो, चना, बासी अन्न, रूखा अन्न और वह अन्न जिसमें कीड़े पड़ गये हों, नहीं खाना चाहिए। काँसेके बर्तनमें भी नहीं खाना चाहिए।

भोजनके सम्बन्धमें एक बात और भी ध्यानमें रखनी चाहिए। जितने भोजनकी आवश्यकता हो, उससे कम ही खाया जाय। भोज्य अन्न खूब पका हुआ हो, थोड़ा गरम हो, हृदयदाही न हो, जिससे इन्द्रियोंको अधिक बल और उत्तेजना मिले, पेट बढ़े एवं निद्रा, आलस्य आवे वह सर्वथा वर्जित है। भगवान्ने एक स्थानपर पार्वतीसे कहा है कि जिनकी जिह्वा परान्नसे जल गयी है, जिनके हाथ प्रतिग्रहसे जले हुए हैं और जिनका मन परस्त्रीके चिन्तनसे जलता रहता है, उन्हें भला मन्त्रसिद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है? जिन्हें भिक्षा लेनेका अधिकार है, उन संन्यासी आदिकोंके लिए भिक्षा परान्न नहीं है। परन्तु वैदिक, सदाचारी, पवित्र एवं कुलीन ब्राह्मणोंसे ही भिक्षा लेनी चाहिए। एक ग्रन्थमें ऐसा उल्लेख मिलता है कि सर्वोत्तम बात तो यही है कि अग्निके अतिरिक्त और कोई भी वस्तु किसीसे न ली जाय। यदि ऐसा सम्भव न हो तो तीर्थके बाहर जाकर पर्वोंको छोड़कर न्यायोपार्जित अन्नकी भिक्षा लेनी चाहिए, सो भी एक दिन खानेभर। जो रागवश इससे अधिक ग्रहण करता है, उसे मन्त्रसिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती।

कुछ आवश्यक बातें

स्त्रीसंसर्ग, उनकी चर्चा तथा जहाँ वे रहती हों वह स्थान छोड़ देना चाहिए। ऋतुकालके अतिरिक्त अपनी स्त्रीका भी स्पर्श करना निषिद्ध है। स्त्री साधिकाओंके लिए पुरुषोंके सम्बन्धमें भी यही बात समझनी चाहिए। कुटिलता, क्षौर, उबटन, बिना भोग लगाये भोजन और बिना संकल्पके कर्म नहीं करने चाहिए। केवल आँवलेसे अथवा पञ्चगव्यसे शास्त्रोक्त विधिसे स्नान करना चाहिए। स्नान, आचमन, भोजन आदि मन्त्रोच्चारणके साथ ही हों। यथाशक्ति तीनों समय, दो समय, अथवा एक समय स्नान, संध्या और इष्टदेवकी पूजा भी अवश्य करनी चाहिए। स्नान-तर्पण किये बिना, अपवित्र हाथसे, नग्न अवस्थामें अथवा सिरपर वस्त्र रखकर जप करना निषिद्ध है। जपके समय माला पूरी हुए बिना बातचीत नहीं करनी चाहिए। आवश्यक हो

तो जप समाप्त करने और प्रारम्भ करनेके पूर्व आचमन कर लेना चाहिए।

यदि जप करते समय एक अन्य शब्दका उच्चारण हो जाय तो एक बार प्रणवका उच्चारण कर लेना चाहिए। यदि वह शब्द कठोर हो तो प्राणायाम भी आवश्यक हो जाता है। यदि कहीं बहुत बात कर ली जाय तो आचमन, अंगन्यास करके पुनः माला प्रारम्भ करनी चाहिए। छींक और अस्पृश्य स्थानोंका स्पर्श हो जानेपर भी यही विधान है। जप करते समय यदि शौच, लघुशंका आदिका वेग हो तो उसका निरोध नहीं करना चाहिए; क्योंकि ऐसी अवस्थामें मन्त्र और इष्टका चिन्तन तो होता नहीं, मल–मूत्रका ही चिन्तन होने लगता है। ऐसे समयका जप–पूजनादि अपवित्र होता है। मलिन वस्त्र, केश और मुखसे जप करना शास्त्र विरुद्ध है। जप करते समय इतने कर्म निषिद्ध हैं–आलस्य, जँभाई, नींद, छींक, थूकना, डरना, अपवित्र अंगोंका स्पर्श और क्रोध।

जपमें न बहुत जल्दी करनी चाहिए और न बहुत विलम्ब। गाकर जपना, सिर हिलाना, लिखा हुआ पढ़ना, अर्थ न जानना और बीच–बीचमें भूल जाना–ये सब मन्त्रसिद्धिके प्रतिबन्धक हैं। जपके समय यह चिन्तन रहना चाहिए कि इष्टदेवता, मन्त्र और गुरु एक ही हैं।

जबतक जप किया जाय, यही बात मनमें रहे। पहले दिन जितना जपका संकल्प किया जाय उतना ही जप प्रतिदिन होना चाहिए, उसे घटाना–बढ़ाना ठीक नहीं। मन्त्रसिद्धिके लिए बारह नियम है– 1. भूमिशयन, 2. ब्रह्मचर्य, 3. मौन, 4. गुरुसेवन, 5. त्रिकालस्नान, 6. पापकर्म–परित्याग, 7. नित्यपूजा, 8. नित्य दान, 9. देवताकी स्तुति एवं कीर्तन, 10. नैमित्तिक पूजा, 11. इष्टदेव और गुरुमें विश्वास, 12. जपनिष्ठा। जो इन नियमोंका पालन करता है, उसका मन्त्र सिद्ध ही समझना चाहिए।

स्त्री, शूद्र, पतित, व्रात्य, नास्तिक आदिके साथ सम्भाषण, उच्छिष्ट मुखसे वार्तालाप, असत्य भाषण और कुटिल भाषण छोड़

देना चाहिए। किसी भी अनुष्ठानके समय शपथ लेनेसे सब निरर्थक हो जाता है। अनुष्ठान आरम्भ कर देने पर यदि मरणाशौच या जननाशौच पड़ जाय तो भी अनुष्ठान नहीं छोड़ना चाहिए। अपने आसन, शय्या, वस्त्र आदिको शुद्ध एवं स्वच्छ रखना चाहिए। किसीका गाना, बजाना, नाचना न सुनना चाहिए और न देखना ही। उबटन, इत्र, फूल-मालाका उपयोग और गरम जलसे स्नान नहीं करना चाहिए। एक वस्त्र पहनकर अथवा बहुत वस्त्र पहनकर एवं पहननेका वस्त्र ओढ़कर और ओढ़नेका वस्त्र पहनकर जप नहीं करना चाहिए। सोकर, बिना, आसनके, चलते या खाते समय, बिना माला ढके और सिर ढककर जो जप किया जाता है, अनुष्ठानमें उसकी गिनती नहीं की जाती। जिसके चित्तमें व्याकुलता, क्षोभ, भ्रान्ति हो, भूख लगी हो, शरीरमें पीड़ा हो, स्थान अशुद्ध हो एवं अन्धकाराच्छन्न हो, उसे वहाँ जप नहीं करना चाहिए। जूता पहने हुए अथवा पैर फैलाकर जप करना निषिद्ध है। और भी बहुत-से नियम हैं, उन्हें जानकर यथाशक्ति उनका पालन करना चाहिए। ये सब नियम मानस जपके लिए नहीं हैं। शास्त्रकारोंने कहा है-

अशुचिर्वा शुचिर्वापि गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन्नपि।
मन्त्रैकशरणो विद्वान् मनसैव सदाभ्यसेत्।।
न दोषो मानसे जाप्ये सर्वदेशेऽपि सर्वदा।

अर्थात् मन्त्रके रहस्यको जाननेवाला जो साधक एकमात्र मन्त्रकी ही शरण हो गया है, वह चाहे पवित्र हो या अपवित्र, सब समय-चलते-चलते, उठते-उठते, सोते-जागते मन्त्रका अभ्यास कर सकता है। मानस जपमें किसी भी समय और स्थानको दोषयुक्त नहीं समझा जाता। कुछ मन्त्रोंके सम्बन्धमें अवश्य ही विभिन्न विधान हैं। उनके प्रसंगमें वे नियम स्पष्ट कर दिये जायँगे।

संक्षेपमें इस बातका निर्देश किया गया है कि जप किस प्रकार सुषुप्त चेतनाको जागरित करके परम तत्त्वसे एक कर देता है। यहाँ उसकी पुनरुक्ति आवश्यक नहीं है। जो लोग आधिदैविक जगत्का

रहस्य जानते हैं, वे भलीभाँति इस तत्त्वसे अवगत हैं कि स्थूल जगत्‌की एक-एक वस्तुके पृथक्-पृथक् अधिष्ठातृ देवता होते हैं और वे जगा लिये जानेपर अनेक प्रकारकी सिद्धियाँ दे सकते हैं। केवल परमार्थ ही नहीं, इनके द्वारा स्वार्थ भी सिद्ध होता है। इन देवताओंमें अनेकों प्रकारकी चमत्कारी शक्ति रहती है और इनकी सहायतासे अर्थप्राप्ति, धर्मपालन एवं कामोपभोग पूर्णरूपसे किये जा सकते हैं। प्राचीन भारतीयोंके सम्बन्धमें जो बहुत-सी बातें सुनी जाती हैं, वे किंवदन्तीमात्र नहीं हैं, पूर्ण सत्य हैं। चाहे अर्वाचीन लोग इसे न मानें परन्तु वे सिद्धियाँ आज भी सम्भव हैं। इन मन्त्रोंमें ऐसी ही शक्ति है, चाहे जो इनका जप करके प्रत्यक्ष फल प्राप्त कर सकता है।

जपकी महिमा और भेद

शास्त्रोंमें जपकी बड़ी महिमा गायी गयी है। सब यज्ञोंकी अपेक्षा जप-यज्ञको श्रेष्ठ बतलाया गया है। जप-यज्ञमें किसी भी बाह्य सामग्री अथवा हिंसा आदिकी आवश्यकता नहीं होती। पद्म एवं नारदीय पुराणमें कहा गया है कि और समस्त यज्ञ वाचिक जपकी तुलनामें सोलहवें हिस्सेके बराबर भी नहीं है। वाचिक जपसे सौगुना उपांशु और सहस्रगुना मानस जपका फल होता है। मानस जप वह है, जिसमें अर्थका चिन्तन करते हुए मनसे ही मन्त्रके वर्ण, स्वर और पदोंकी बार-बार आवृत्ति की जाती है। उपांशु जपमें कुछ-कुछ जीभ और होंठ चलते हैं, अपने कानों तक ही उनकी ध्वनि सीमित रहती है, दूसरा कोई नहीं सुन सकता। वाचिक जप वाणीके द्वारा उच्चारण है। तीनों प्रकारके जपोंमें मनके द्वारा इष्टका चिन्तन होना चाहिए। मानसिक स्तोत्र-पाठ और जोर-जोरसे उच्चारण करके मन्त्र-जप दोनों ही निष्फल हैं। गौतमीय तन्त्रमें कहा गया है कि केवल वर्णोंके रूपमें जो मन्त्रकी स्थिति है, वह तो उसकी जड़ता अथवा पशुता है। सुषुम्णाके द्वारा उच्चारित होनेपर उसमें शक्तिसंचार होता है। ऐसी भावना करनी चाहिए कि मन्त्रका एक-एक अक्षर चिच्छक्तिसे ओतप्रोत है और परम

अमृतस्वरूप चिदाकाशमें उसकी स्थिति है। ऐसी भावना करते हुए जप करनेसे पूजा, होम आदिके बिना ही मन्त्र अपनी शक्ति प्रकाशित कर देते हैं। मन्त्रजप करनेकी यही विधि है कि सम्पूर्ण प्राण-बुद्धिसे सुषुम्णाके मूलदेशमें स्थित जीवरूपसे मन्त्रका चिन्तन करके मन्त्रार्थ और मन्त्रचैतन्यके ज्ञानपूर्वक उनका जप किया जाय। कुलार्णवतन्त्रमें भगवान् शङ्करने कहा है कि मन एक जगह, शिव दूसरी जगह, शक्ति तीसरी जगह और प्राण चौथी-ऐसी स्थितिमें मन्त्रसिद्धिकी क्या सम्भावना है। इसलिए इन सबका एकत्र चिन्तन करते हुए ही जप करना चाहिए।

मन्त्रमें सूतक और मन्त्रसिद्धिके साधन

मन्त्र दो प्रकारके सूतक होते हैं-एक जात-सूतक और दूसरा मृत-सूतक। इनके दोनों अशौचोंका भङ्ग किये बिना मन्त्र सिद्ध नहीं होता। इसके भंग करनेकी विधि यह है कि जपके प्रारम्भमें एक सौ आठ बार अथवा समर्थ होनेपर सात बार ओंकारसे पुटित करके अपने इष्ट मन्त्रका जप कर लेना चाहिए। मन्त्रार्थ और मन्त्रचैतन्यका उल्लेख किया जा चुका है। उनके साथ ही योनिमुद्राका अनुष्ठान करना भी आवश्य होता है। उसके विकल्पमें भूत-लिपिका विधान होता है, उससे अनुलोम-विलोम पटित करके मन्त्र-जप करनेसे बहुत ही शीघ्र मन्त्र सिद्ध होता है। भूत-लिपिका क्रम निम्नलिखित है-

अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ ह य र व ल ङ क ख घ ग ञ च छ झ ज ण ट ठ ड न त थ ध द म प फ भ ब श ष स (इसके बाद इष्टमन्त्र; फिर) स ष श ब भ फ प म द ध न थ त ड ढ ठ ण ज झ छ च ञ ग घ ख क ङ ल व र य ह औ ओ ए ऌ ऋ उ इ अ।

इस प्रकार एक महीनेतक एक हजार जप करना चाहिए। ऐसा करनेसे मन्त्र जागरित हो जाता है। तीन प्राणायाम पहले और तीन पीछे कर लेने चाहिए। प्राणायामकी साधारण विधि यह है कि चार मन्त्रसे पूरक, सोलह मन्त्रसे कुम्भक और आठ मन्त्रसे रेचक करना चाहिए।

जप पूरा हो जाने पर उसको तेजःस्वरूप ध्यान करके इष्टदेवताके दाहिने हाथमें समर्पित कर देना चाहिए। यदि देवीका मन्त्र हो तो बायें हाथमें समर्पण करना चाहिए। प्रतिदिन अथवा अनुष्ठानके अन्तमें जपका दशांश हवन, हवनका दशांश तर्पण, तर्पणका दशांश अभिषेक और यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन कराना चाहिए।

होम, तर्पण आदिमें-से जो अंग पूरा न किया जा सके, उसके लिए और भी जप करना चाहिए। होम न किया जा सके, तो उसके लिए और भी जप करना चाहिए। होम न कर सकनेपर ब्राह्मणोंके लिए होमकी संख्यासे चौगुना, क्षत्रियोंके लिए छःगुना, वैश्योंके लिए आठगुना जप करनेका विधान है।

स्त्रियोंके लिए वैश्योंके समान ही समझना चाहिए। शूद्र यदि किसी वर्णका आश्रित हो, तब तो उसके लिए अपने आश्रयकी संख्या ही समझनी चाहिए। यदि वह स्वतन्त्र हो तो उसे होमकी संख्यासे दसगुना जप करना चाहिए। अर्थात् एक लाखका अनुष्ठान हो तो होमके लिए भी एक लाख जप करना चाहिए। 'योगिनोहृदय'में वह संख्याका दुगुना, क्षत्रियोंके लिए तिगुना, वैश्योंके लिए चौगुना और शूद्रोंके लिए पाँचगुना है। अनुष्ठानके पाँच अङ्ग हैं-जप, होम, तर्पण, अभिषेक और ब्राह्मण-भोजन। यदि होम, तर्पण और अभिषेक न हो सकें तो केवल ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे भी काम चल जाता है। स्त्रियोंके लिए तो ब्राह्मण-भोजनकी भी उतनी आवश्यकता नहीं है। उन्हें न्यास, ध्यान और पूजाकी भी छूट है, केवल जपमात्रसे उनके मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। अनुष्ठानमें दीक्षासम्पन्न ब्राह्मणोंको ही खिलाना चाहिए।

अनुष्ठान पूरा हो जानेपर गुरु, गुरुपुत्र, गुरुपत्नी अथवा उनके वंशजोंको दक्षिणा देनी चाहिए। वास्तवमें यह सब उनकी प्रसन्नताके लिए ही है। जबतक वे प्रसन्न न हों, तबतक परम रहस्यमय ज्ञानकी उपलब्धि नहीं हो सकती। अपने प्रयत्न एवं विचारसे चाहे कोई कितना ही ऊपर क्यों न उठ जाय, वह पूर्णरूपसे सन्देहरहित नहीं हो सकता। इसलिए विशेष करके उसासनाके सम्बन्धमें गुरुके अतिरिक्त और कोई

गति ही नहीं है। उनके बिना वह रहस्य और कौन बता सकता है, जिसमें गुरु और शिष्य एक हैं। शिष्य स्वयं गुरुका अस्तित्व कभी मिटा नहीं सकता। केवल गुरु ही अपने गुरुत्वको मिटाकर शिष्यको उसके वास्तविक स्वरूपमें प्रतिष्ठित करते हैं। यह एक ऐसा अनुष्ठानकी पूर्णता गुरुकी प्रसन्नतामें है। एक बार मन्त्र सिद्ध हो जानेपर दूसरे मन्त्रोंकी सिद्धिमें किसी प्रकारका विलम्ब नहीं होता, वे निर्विघ्न सिद्ध हो जाते हैं।

इस प्रकार विधि-निषेध आदि जानकर गुरुदेवके आश्रयमें रहते हुए, श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मन्त्रानुष्ठान करनेसे अवश्यमेव मन्त्रसिद्धि होती है-इसमें कोई सन्देह नहीं है।

●

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज द्वारा विरचित एवं सम्प्रति उपलब्ध साहित्य

वेदान्त

मुण्डक सुधा	110.00
माण्डूक्य प्रवचन (आगम प्रकरण) भाग-1	150.00
माण्डूक्य प्रवचन (वैतथ्य प्रकरण) भाग-2	150.00
माण्डूक्य प्रवघन (अद्वैत प्रकरण) भाग-3	150.00
माण्डूक्य प्रवचन (अलात शान्ति) भाग-4	100.00
ईशावास्य प्रवचन	20.00
ईशानुभूति (ईशावास्योपनिषद् के आधार पर)	40.00
केनोपनिषद्	70.00
कठोपनिषद् (दो भागोंमें)	250.00
बृहदारण्यकोपनिषद्	60.00
श्वेताश्वतरोपनिषद्	150.00
छान्दोग्य-बृहदारण्यक एक दृष्टिमें	10.00
ब्रह्मसूत्र प्रवचन-भाग 1	60.00
ब्रह्मसूत्र प्रवचन-भाग 2	75.00
ब्रह्मसूत्र प्रवचन-भाग 3	60.00
दृग दृश्य विवेक	100.00
विवेक कीजिये (विवेक चूड़ामणि प्रवचन)	100.00
अपरोक्षानुभूति प्रवचन	80.00
वेदान्त बोध	
साधना और ब्रह्मानुभूति	70.00
महाराजश्रीकी डायरीसे	6.00
आनन्द सूत्र	15.00
आनन्दानुभव	20.00
मंत्र-विज्ञान	
जीवन्मुक्ति विवेक	75.00
अष्टावक्रगीता	25.00
अष्टावक्रगीता प्रवचन	80.00
मिथ्यात्व ज्ञान	20.00
ध्यान और ज्ञान	90.00

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता-रस-रत्नाकर (सम्पूर्ण गीता)	200.00
सांख्ययोग (गीता अध्याय-2)	200.00
कर्मयोग (गीता अध्याय-3)	60.00
ध्यानयोग (गीता अध्याय-6)	150.00
ज्ञान-विज्ञान-योग (गीता अ.-7)	130.00
अक्षर ब्रह्मयोग (गीता अ.-8)	50.00
राजविद्या राजगुह्ययोग (गीता अध्याय-9)	90.00
विभूतियोग (गीता अ.-10)	175.00
भक्ति योग (गीता अ.-12)	90.00
ब्रह्मज्ञान और उसकी साधना (गीता अ.-13)	250.00
पुरुषोत्तमयोग (गीता अ.-15)	120.00
दैवी-सम्पदयोग (गीता अ.-16)	50.00
दैनिक जीवनमें गीता	60.00
योग: कर्मसु कौशलम्	20.00
मामेकं शरणं ब्रज	20.00
गीतामें भक्तिज्ञान समन्वय	30.00
गीतामें मानवधर्म	25.00
वासुदेव: सर्वम्	10.00
मया ततमिदं सर्वं (मेरा सब ताना-बाना)	25.00
गीता दर्शन (तीन भागोंमें)	650.00

श्रीमद्भागवत

भागवत दर्शन (दो भागोंमें)	600.00
ईशानुकथा (नवम स्कन्ध)	30.00
भागवत - दशम स्कन्ध	150.00
मुक्ति स्कन्ध	
(एकादश स्कन्ध) (दो भागोंमें)	270.00
रास पंचाध्यायी	150.00
श्रीकृष्णलीला रहस्य	45.00
भागवतामृत	70.00
भागवत व्यंजन	50.00
भागवत सर्वस्व	25.00
गोपीगीत	
वेणुगीत	40.00
युगलगीत	50.00
प्रणयगीत	60.00
गोपियोंके पाँच प्रेमगीत	20.00
उद्धवगीत	25.00
कपिलोपदेश	60.00
ब्रह्म-स्तुति	85.00
हंसगीता (हंसोपाख्यान)	15.00
सद्गुरुसे क्या सीखें?	15.00
उनकी कृपा	20.00
ऊखल बन्धन लीला	50.00
सत्संग महिमा	20.00
प्रह्लाद चरित	60.00
उद्धव व्रजगमन	180.00
भागवत विमर्श (दो भागोंमें)	45.00
मानव जीवन और भागवत धर्म	100.00
गर्भ स्तुति	60.00
वसुदेव देवकी स्तुति	20.00
भागवत विचार दोहन	30.00
भिक्षुगीत	35.00
मैं ही मैं (चतु:श्लोकी भागवत)	30.00
सुदामा चरित	10.00

रामायण

श्रीरामचरितमानस	
(तीन भागोंमें)	1000.00
अध्यात्म रामायण	250.00
श्रीमद्वाल्मीकि रामायणामृत	100.00
मानस दर्शन	40.00
सुन्दरकाण्ड	
(वाल्मीकि रामायणान्तर्गत)	30.00
श्रीमद्वाल्मीकि रामायण	300.00

भक्ति एवं साधना

विष्णु पुराण	.00
भक्ति एवं लीला	10.00
नाम महिमा	25.00
भगवन्नाम	10.00
शरण	10.00
प्रार्थना	10.00
नारद भक्ति दर्शन	100.00
भक्ति सर्वस्व	75.00
भक्तिदर्शनामृत	50.00
भक्तिका चमत्कार	35.00

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

विपुल 28/16 बी. जी. खेरमार्ग, मालाबार हिल, मुम्बई-400006

फोन : (022) 23682055, मो. : 09619858361

● शाखा कार्यालय ●

श्रीअखण्डानन्द पुस्तकालय, आनन्द कुटीर, मोतीझील, वृन्दावन-281121

फोन : (0565) 2913043, 2540487, मो. : 09837219460

मंत्र विज्ञान

'मन्त्र' शब्दका अर्थ है 'गुप्त परामर्श'। मन्त्र मनमाने ढंगसे नहीं, गुरुकी कृपासे प्राप्त होता है।

गुरुकी कृपा और शिष्यकी श्रद्धाको मंत्र मिला देता है। जैसे एक लोहेसे कोई वायुयान, कोई तोप, कोई टैंक, कोई घर बना लेता है-वैसे ही स्वर और वर्ण अक्षरोंसे अनेक-अनेक प्रकारके मंत्र बने हैं, क्यों?

क्योंकि, कोई मनुष्य पशु-योनिसे आया, कोई देवयोनिसे कोई साधन सम्पन्न है, कोई सीधे नरककुण्डसे, किसीका मन सुप्त, किसीका जागृति-ऐसी स्थितिमें सबके लिए एक मन्त्र, एक देवता और एक विधि नहीं हो सकती।

किसी-किसी बीज मंत्र में पाँच-पाँच स्वर-वर्णाक्षर होते हैं-वह पढ़कर नहीं बोले जा सकते, उन्हें गुरुसे सीखना होता है।

उपयोगी मंत्रोंके जपकी विभिन्न विधियाँ 'भक्ति-सर्वस्व' नामक पुस्तकमें पूज्य महाराजश्री स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजीने लिखवा दिया है-पुस्तक उपलब्ध है।

साधकोंको मंत्र-साधनसे सिद्धि प्राप्त करानेमें महाराजश्रीकी यह वाणी सहायक है।

आनन्द कानन प्रेस
फोन : 2392337